[illegible]

गंगा-पुस्तकमाला का [illegible] पुष्प

रति-रानी

लेखक
रसिकेन्द्र

मिलन होइहै स्याम सँ, बिछुरत निकसै बैन ;
पै दुखियाँ अँखियाँ कहतु, या बिन धीर लगै न ।
(पृष्ठ २०६)

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द २)]   सं० १९८५ वि०   [सादी १॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

स्नेह-समर्पण

ब्रज में विहार करनेवाले नटवर बिहारीलाल के

भक्त,

ब्रजभाषा में विहार करनेवाले

वैकुंठवासी

कविवर 'बिहारीलाल'

के

कर कमलों में

सादर समर्पित ।

"रसिकत्रय"

परिचय

सुंदर, सुखद और सुहावना समय था। पूर्व दिशा पीला पट पहनकर अपने प्रिय पति प्रभाकर की प्रतीक्षा कर रही थी। वृक्षों पर बैठी हुई चिड़ियाँ चुहचुहाहट के साथ तरह-तरह के तराने और राग-रागिनियाँ गा-गाकर सुना रही थीं। मैदानों में मृग मस्त होकर कुलाँचें मार रहे थे। हरी-हरी दूर्वा पर बैठ हुए शशक घास कुतर रहे थे। प्रातःकालीन पावन पवन प्राणी मात्र को पवित्रता और प्रेम का पाठ पढ़ा रहा था।

तीन मित्र, जिनके मुखारविंद आनंद की आभा से आलोकित हो रहे थे, वायु-सेवनार्थ निकले। धीरे धीरे उषा का आगमन हुआ। प्रकृति-नटी लाल साड़ी पहनकर नाच उठी। हरिण अपनी प्रिय हरिणियों के साथ विहार करके सबके मन को हरण करने लगे। सर्वों के नये-नये और लाल पात उषा की लालिमा से लाल होकर और भी ललित हो उठे। हवा हिला हिलाकर हर-पुष्प को जगाने लगी। पेड़ों पर बैठे हुए पक्षी कूजन कूजने लगे। पीपल की पत्तियाँ रिमझिम रिमझिम पड़नेवाली मेह की बूँदों की आवाज़ का अनुकरण करने लगीं।

दोनों प्रेमियों ने घूम घामकर एक विशाल वाटिका में प्रवेश किया। प्रभाकर ने प्रकट होकर अपने पद परसन से सबके पापों को पखार डाला। उनके कर-स्पर्श से कोमल कमल कर्कप कपोल होकर खिल उठे। मृग हरे तृण चरने लगे। शशकों के कानों को करमाली की किरणें पार करने लगीं। पक्षियों ने अंतिम गायन गाया। पवन में प्रकाश फैल गया।

एक सघन वृक्षों की कुंज में पड़ी हुई बेंच पर हमारे पूर्व-परिचि
प्रेमी जा बैठे। चित्रों की चर्चा चली। गीत गाए गए। साहित्यि
समालोचना सुनाई गई। इस प्रकार प्रेमियों ने प्रेम की पूजा क

तेजोराशि में से तेज का अंश निकला। कमल की के
झड़ी। कोयल के कल कंठ से कुहू कुहू का सुमधुर संगीत निकल
बुलबुल के मुँह से मीठा बोल निकला। वेगवान् वायु के वेग
वृक्षों की डालियाँ बड़े वेग के साथ हिलने लगीं। प्रेम का पुन
पदार्पण हुआ। प्रेमियों को प्रेमदेव के दर्शन हुए। प्रेमदेव ने प्र
होकर अपनी प्रतिभा, प्रभा और प्रेम प्रेमियों को प्रदान किया। प्रेम
उनके अन्दर प्रवेश करके उनसे प्रस्तुत पुस्तक लिखने की प्रेरणा क

प्रकृति के प्रधान और प्रिय पुत्र पाटल में बैठकर प्रेमियों ने
पुस्तक के पाठों को पढ़ा और अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें पुस्
रूप में प्रकाशित किया।

उन्हीं महाकवि प्रेम की प्रेरणा का पुष्प स्वरूप यह पुस्तक
और उन्हीं की प्रेयसी रति रानी के पद-पद्मों में यह पुष्प चढ़ा वि
गया है। उक्त रानीजी को प्रसन्न करने के लिये पुस्तक का नाम
उनके पीछे रति रानी रक्खा गया है।

प्रेम ही परमेश्वर है, और यह प्रेम की रानी हैं। अत प्रेम-
पाकर यह प्रसन्न होंगी, और हमारे साहित्य के स्रोत को फिर स
बनाकर हमारा सुमनोरथ सफल करेंगी, ऐसी आशा की जाती है

मनीषी पाठकों से प्रार्थना है कि प्रस्तुत प्रेम पुष्प के परिमा
परवा न करके, रति-रानी के उपासकों की भक्तिपूर्ण उपासना
ध्यान में रखते हुए, इस प्रेम-पुष्प को प्रेम दृष्टि से देखें और
उद्देश्य से यह रति रानी को अर्पित किया गया है, उसकी पूर्ति
में प्रयत्नशील हों।

भूमिका

'साहित्य'

अँगरेज़ी भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत है 'Necessity is the mother of invention', अर्थात् आवश्यकता आविष्कार की माता है। किसी भी सुव्यवस्थित इतिहास प्रसिद्ध सभ्य समाज के सांस्कृतिक जीवन का स्वरूप स्थिर रखने के लिए उत्पत्ति के साहित्य की आवश्यकता होती है। हमारे पुरातन और समस्त आधुनिक आचार्यों को इस पारिभाषिक शब्द 'साहित्य' के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं था, और न है। अतएव इसको परिभाषा (Definition) की सीमा में बाँध देने का उन्होंने कभी प्रयत्न तक नहीं किया और शब्दार्थ में समष्टि, एकत्रता, सहायता का भाव इत्यादि का बोध होने पर भी साहित्य शब्द के पर्याय में वाङ्मय, काव्य, विद्या, शास्त्र, शास्त्र समूह, पुस्तक-समूह, इत्यादि व्यापक अर्थों का निस्संकोच प्रयोग होता आया है।

अँगरेज़ी भाषा में हम देखते हैं कि इस शब्द की भाव व्याप्ति को पृथक् पृथक् विद्वानों ने पृथक् पृथक् परिभाषाओं में सीमाबद्ध करने की चेष्टाएँ की हैं, परन्तु यथेष्ट सफलताजन्य एकमत आज तक नहीं हो सका है। कई कहते हैं, Literature is criticism of life (Arnold) अर्थात् साहित्य मानव जीवन की आलोचना है, और वास्तव में यह बात भी कई अंशों में सत्य है। मानव विचारों का एक धर्म अपने जीवन के भावों की आलोचना करना भी है। वास्तव में साहित्य में सत्य और अदमनीय यथार्थता (Sincerity)

का जिसको कि कारलाइल महोदय ने सच्चे साहित्य का सबसे सच्चा और खरा गुण माना है, तब तक सम्यक् समावेश नहीं हो सकता, जब तक मानव विचार-स्फूर्तियों का अपने जीवन कृत्यों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं हो जाता। जब तक वे विचार स्फूर्तियाँ अपने जीवन पर आलोचक की दृष्टि से भाव प्रकट कर अपनी उपादेयता नहीं सिद्ध कर देतीं, तब तक उनकी स्थिति का कोई स्थायी प्रमाण नहीं माना जा सकता। अतएव वास्तविकता की दृष्टि से साहित्य की व्याख्या व समीक्षा यों अवश्य की जा सकती है, परन्तु वह अधूरी है। केवल "जीवन की आलोचना" से ही साहित्य शब्द का व्याप्ति निर्दर्शित नहीं की जा सकती। शब्द का क्षेत्र और भी विस्तृत है। एक दूसरे पाश्चात्य विद्वान् ने साहित्य की व्याख्या और ज़्यादा विस्तृत, परन्तु तो भी अपूर्णरूपेण की है। यथा—Literature consists of the best thoughts of best persons reduced to writing " अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के सर्वश्रेष्ठ विचारों की लिपिबद्ध संहति को साहित्य कहते हैं। यह व्याख्या पूर्वापेक्षाकृत अवश्य ज़्यादा व्यापक है, परन्तु यदि हम इसे एक बार मान भी लें, तो भी यह नहीं जान सकते कि साहित्यान्तर्गत 'सर्वश्रेष्ठ विचारों' की विशेषता क्या है, और उनके उत्पादन के ढंग क्या हैं। सारांश, यह व्याख्या केवल मस्तिष्कोपयोगी है, हृदयग्राहिणी नहीं। इसी तरह अन्यान्य विद्वानों ने भी इस बृहत् शब्द की व्याख्या करने की—गागर में सागर भर देने की—चेष्टा की है, परन्तु सफलता कहाँ ?

साहित्य-शब्द की व्याप्ति और उसका दिव्यरूप

हमारे विचार में तो साहित्य की सीमा उसी प्रकार निर्धारित नहीं की जा सकती, जिस प्रकार मानव विचार का अथवा परमात्मा के अस्तित्व की। साहित्य मानव-जीवन के उत्कृष्टतम विचारों का समुज्ज्वल, विशुद्ध, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, दिव्यस्वरूप, आदर्श-मात्र है। दर्शन-शास्त्र के सिद्धा-

सानुराग आदर्शों की व्याप्ति निर्मल है ; यह सदैव एक समानशील, दर्पनिर्मोक्ष है ; वस्तुतः चिर नहीं। यह आदर्श सृष्टि के आदि-काल से मानव विचारों का साथी रहा है। इसीलिये 'साहित्य' कहलाता है और प्रलयावसान भी उस चिन्मूर्ति के साथ रहेगा, जिसका वर्णन भर्तृहरि ने इस श्रद्धायुक्त श्लोक में किया है—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।

हमारी तो यह भी दृढ़ धारणा है कि तद्रूप तद्गुणाश्रित होने के कारण साहित्य का सृष्टि कर्ता की विभूतियों के साथ घनिष्ठत्व का संबंध है। अतएव भर्तृहरि का उद्धृत श्लोक परमात्मा और साहित्यात्मन् जगदीश्वर दोनों की आराधना के अर्थ में समान भाव से प्रयुक्त हो सकता है।

साहित्य वृद्धि की कठिनाइयाँ

हमें यह प्रगट करते हुए अत्यंत हर्ष होता है कि हमारे हिंदी साहित्य के व्यापक रूप को अलंकृत और सुसंगठित करने के लिये मातृभाषा सेवकों ने प्रयत्न करना आरंभ कर दिया है, और दिन प्रति दिन वे इस देव मन्दिर को सर्वांगसम्पन्न करने की भरसक चेष्टा कर रहे हैं। देश-सेवा, समाज सेवा, और ईश सेवा का इससे श्रेष्ठतर कोई अन्य मार्ग नहीं हो सकता। परन्तु जहाँ कई सद्विचारप्रेरित मातृ-भाषा के सच्चे सेवक रात दिन अपनी आदर्श सिद्धि के शुभकार्य में लगे हुए हैं, वहाँ कई एक दूसरे, बुद्धिहीन, प्रतिनिविष्ट धी, मिथ्यायशलिप्सु और प्रतिष्ठालोभी पुरुष अपनी वाक् स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर ऐसे सच्चे सेवकों के शुभ कार्यसंपादन में विक्षेप और विघ्न डालने के लिये भी उद्यत रहते हैं। प्रायः देखा गया है कि इस प्रकार के विक्षेपकारी पुरुष या तो ईर्षा वश अच्छे अच्छे लब्ध प्रतिष्ठ साहित्य सेवियों की उत्कृष्ट कृतियों का भद्दा

अनुकरण कर यश प्राप्ति की चेष्टा करते हैं, जिससे कि सच्चे साहित्य सेवियों के कार्य में बाधा पड़ती है, अथवा ये मिथ्याभिमानी लोग जन-समाज की प्रसन्नता के हेतु बेचारे कार्य कर्ताओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्रों को भयकररूपेण विस्फारित कर निर्बोध जनता के समक्ष प्रकट करते हैं, तथा लेखक की चमत्कारोत्पादिनी, यथार्थ गुण-दर्शिनी विशेषताओं को छिपाए रखते हैं, जिससे कि व्यर्थ ही बेचारे साहित्य सर्वी अथवा कवि की आत्मा को दु ख होता है, और उसे अपने कार्य में अरुचि और विरक्ति होने लगती है। आश्चर्य तो यह है कि जडबुद्धि और अपने हिताहित को स्वय न विचार सकनेवाला समाज ऐसे पतित जनों को भी 'समालोचक' के उच्च, गौरवपूर्ण पद से अलकृत कर देता है।

साहित्य अनुकरण का वाञ्छनीय आदर्श

हमारे उपर्युक्त कथन का यह आशय नहीं हैं कि अनुकरण करना साहित्य की दृष्टि से कोई पाप है, अथवा साहित्यिक आलोचना करना कोई बुरी बात है। इसके विपरीत अनुकरण को हम साहित्य का एक उत्कृष्ट साधन मानते हैं और आलोचना को साहित्य का सर्वश्रेष्ठ हित सवर्धक मार्ग। यों तो देखा जाय, तो विश्व में समष्टि की स्थिति अनुकरण-साधन के द्वारा सुसाध्य है, और उसी पर प्रायश निर्भर है। काव्य शास्त्र प्राकृति-सौंदर्य और मानव प्रकृतिसौंदर्य का एक आभास-मात्र है। सरांश, अनुकरण एक पवित्र और उपादेय स्वाभाविक वृत्ति है। परतु साथ-ही साथ यह भी देखना है कि अनुकरण का सदुपयोग करना ही हमारा कर्तव्य है, उसका दुरुपयोग करना नहीं। और, हमें तो केवल अनुकरण के दुरुपयोग के प्रति आपत्ति है। रही यह बात कि सदुपयुक्त अनुकरण और दुरुपयुक्त अनुकरण में क्या अंतर है, यह तो साहित्य के परिशीलन करनेवाले सहृदय देखते ही पहचान सकते हैं। इस पहचान का सबध व्यक्तिगत हृदय

के साथ है। इसके लिये किसी प्रकार के नियम अथवा सूत्र न तो बने हैं, और न बन ही सकते हैं।

साहित्यिक भावापहरण का [illegible]

कुत्सित अनुकरण के अंतर्गत भावापहरण (Plagiarism) का नाम भी लिया जाता है। इससे भी साहित्य का बहुत अहित हो रहा है। साहित्य की चोरी वर्तमान हिंदी की अवस्था में एक साधारण व्यापार हो रहा है। इसके अवरोध के लिये हिंदी साहित्य-शासक-मंडली ने अब तक कोई उपयुक्त न्यायालय भी स्थापित नहीं हो चुका है। अतएव अपहरणकर्ताओं का भी उत्साह, इस अंधेर को देखकर, बढ़ चला है और वे दिन दहाड़े भावापहरण कर मालामाल हो रहे हैं। यही नहीं, वर्तमान हिंदी जगत् में उन्हें अपनी इस अपहरण कुशलता के लिये यथेष्ट पुरस्कार की भी प्राप्ति होती देखी गई है। इस कुव्यवस्था को मिटाने के लिये सच्चे समालोचकों की एक परिषद् (Academy of Literary Critics) की आवश्यकता है, जो निष्पक्ष भाव से न्याय करती हुई यह निर्णय कर सके कि अमुक अनुकरण तो साहित्य के लिये अहितकर है, जो यथार्थ में किसी प्रतिष्ठित कवि का दर्पावश चोरी कही जा सकती है; और अमुक अनुकरण सदुपयुक्त अतएव साहित्यिक हित संवर्धक है। इसी प्रकार यही परिषद् भावापहरण के दोष और गुणों को भी पहचान कर यह घोषित कर सके कि अमुक भावापहरण तो, केवल कवियों के भावों का अकस्मात् सामंजस्य-मात्र है और अमुक भावापहरण चोरी है। परंतु जब तक इस प्रकार की किसी प्रतिष्ठित और सम्मान्य परिषद् का हिंदी-जगत् में आविर्भाव नहीं होता, तब तक साहित्योत्पादकार्य को सच्चा उत्साह नहीं मिल सकता और न तब तक हिंदी-साहित्य में किसी प्रकार की व्यवस्था ही स्थापित हो सकती है।

आदर्श आलोचना का दिव्य स्वरूप

आलोचकों के विषय में यही कहा जा सकता है कि आलोचक समाज के साहित्यिक जीवन का अग्रगण्य नेता और पथ प्रदर्शक होता है। उसका कर्तव्य हंस की तरह नीर क्षीर विवेचन करना है। दूध से पानी को पृथक् करने के सिवा उसका एक और विधेयात्मक धर्म है और वह यह कि उसे हमेशा गूढ़ान्वेषिणी दृष्टि द्वारा समाज के साहित्यिक जीवन को बड़ी सूक्ष्मता के साथ देखते रहना चाहिए। जहाँ कहीं किसी आशाजनक प्रतिभा को स्फुरित होते देखा, तो चाहे वह सासारिक हीन दशा में हो, अथवा उन्नत दशा में; चाहे वह कमल के हृदय में प्रादुर्भूत केशर के रूप में हो, अथवा कीचड़ में फँसी हुई, उसके श्लिष्ट हृदय को चीरकर बाहर आने का प्रयास करती हुई नलिनी के रूप में, समालोचक का यही परम धर्म है कि वह सूर्य करों की भाँति अपने सहायक भुजाओं को फैलाकर विकासावरोधी कर्दम का शोषण करे और नलिनी के विकास को सहायक हो। यह तो हुआ समालोचक का विधेयात्मक ब्रह्मा और विष्णु स्वरूप।

समालोचक को संहारात्मक भयंकर रुद्र का रूप धारण कर साहित्य-वंचकों, परछिद्रान्वेषकों और मिथ्या यशलिप्सुओं का संहार करना भी धर्म है। संहार के बिना सृष्टि विधान या सृष्टि-रचा नहीं हो सकती, जिस प्रकार कँटीली और हानिकारक वनस्पतियों को काटे बिना खेत में बीजारोपण नहीं हो सकता। इस कठोर शासन-कार्य को करते हुए यदि उसने पक्ष अथवा करुण भाव से प्रेरित हो नियमित दंड की कठोरता को शिथिल कर दिया, अथवा अयथार्थ दंड दे दिया, तो ईश्वर और समाज की दृष्टि में उत्तर दायित्व और अधिकार का दुरुपयोग करने के हेतु वह दोषी हो चुका। सच्चा समालोचक त्रिदेव की तीनों विभूतियों को धारण करनेवाला परमात्मा

का स्वरूप है, और हमें उसकी इसी प्रकार प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

अच्छे समालोचक का चित्र रूप हम ऊपर दिखा चुके। अब हम समालोचक द्वारा प्रयुक्त और प्रयोजनीय कई एक साहित्य साधनों की चर्चा करेंगे। इसमें यह प्रकट ही अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक हिंदी साहित्य में आदर्श समालोचक का नितांत अभाव है। परिष्कृत समालोचना के विविध साधनों का विशुद्ध रूप में प्रयोग भी हमें सर्वत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। जो कुछ आलोचना होती भी है या तो वह अत्यंत कठोर वाग्बाण प्रहारों के रूप में की जाती है, अन्यथा अतिशय प्रशंसा और चाटुकारिता से भरी होती है। यथार्थ प्रशंसा किंवा यथार्थ निंदा का क्षय और लोप सा हो गया जान पड़ता है।

आलोचना के प्रकार

आदर्श समालोचना के, भारतीय और पाश्चात्य साहित्यकारों के मतानुसार, दो मोटे भेद किए जा सकते हैं। एक तो वाच्यार्थ समालोचना, जिसके द्वारा किसी साहित्यकृति के गुण अवगुणों का विवेचन, यथार्थ और सीधे-सादे ढंग से स्पष्ट प्रशंसा अथवा निराकृति के रूप में किया जाय। दूसरी लक्षणा मूलक व्यंग्य-समालोचना। पहली स्फुट, स्पष्ट, रूक्ष, सीधी सादी, यथार्थ-प्रदर्शक आलोचना है। यह सरलतया बुद्धि गम्य है अवश्य, परंतु, रोचकता का उसमें नितांत अभाव होता है। अब स्थायी साहित्य का तथा काव्य का हमारे शास्त्रकारों ने रोचकता एक आवश्यक गुण और लक्षण बताया है। यथा—'इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली' अथवा यथा—'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' (हम यहाँ 'काव्य' का विशेष व्यापक अर्थ 'साहित्य' लेते हैं जैसा कि पहले कह आए हैं)। वास्तव में रस विहीन वाक्य साहित्य के किसी भी अंग का अंगीभूत नहीं

हो सकता। समालोचना भी रोचक ढग से की जा सकती है। वह भी रसात्मक बनाई जा सकती है। ऐसी समालोचना ज्यादा हृदय ग्राही, ज्यादा मनोरजक, अतएव विशेष काव्य-गुण सपन्न होने के कारण साहित्य की अपेक्षाकृत ज्यादा बहुमूल्य, स्थायी सपत्ति समझी जा सकती है और पाश्चात्य साहित्यों में अब भी समझी जाती है। परतु हिंदी साहित्य में अभी तक इस साहित्याग को रोचक, काव्यगुणसपन्न और हृदय ग्राही बनाने के कोई पूर्वचिह्न भी दिखाई नहीं देने लगे हैं, इसका हमें खेद है। आशा है, समय परिवर्तन के साथ यह कमी भी शीघ्र पूर्ण हो जायगी।

रोचक आलोचना शास्त्र

प्रकार भेद से दूसरी समालोचना भी कई प्रकार की होती है। हिंदी में इनका नितात अभाव होने के कारण हम विस्तृत अँगरेज़ी तथा सस्कृत साहित्य से लेकर इनके दृष्टात और रीति उद्धृत करेंगे। अँगरेज़ी-साहित्य में रोचक आलोचना के अतर्गत कई भेद हैं। यथा—

(१) Farce अर्थात् (प्रहसन अथवा दुर्म्मलिका), (२) Burlesque (भाड अथवा भाण), (३) Rediculе (हेला), (४) Satire (आक्षेप), (५) Parody (अनुकरणम् अथवा अनुकरण-काव्यम्)। ध्यान रहना चाहिए कि आलोचना के इन रोचक साधनों को अपने समय के सर्वश्रेष्ठ अँगरेज़-साहित्यिक महारथियों ने अपनाया था, और इनके द्वारा अपने साहित्य की बड़ी सेवा कर उसे परिष्कृत और देदीप्यमान् बनाया था। अँगरेज़ी गद्य लेखक शिरोमणि डॉक्टर जानसन, आक्षेप-काव्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक कविवर पोप, अँगरेज़ी उपन्यास-साहित्य के जन्म दाता फील्डिंग महोदय, आलोचक श्रेष्ठ ड्रायडन तथा सर्वश्रेष्ठ प्रहसनकार स्विफ्ट तथा वाल्टेयर (फ्रेंच) और आधुनिक समय के आलोचनात्मक अनुकरण के मुख्य लेखक हिल्टन, स्टीफन्स, स्टौडार्ड बॉक्स इत्यादि महानुभावों ने

आलोचना के इन्हीं रोचक लताओं के द्वारा अँगरेज़ी-साहित्य को इतना परिपुष्ट और विशुद्ध बना दिया है कि उसके लेखकों की किसी भी प्रस्तुत रूप में उनकी गति नहीं होती, तथा अँगरेज़ी साहित्य आज संसार के समस्त साहित्यों को अतिक्रम करके सर्वोपरिस्थित है। भारतवर्ष सदा से गुणग्राहिता और उदार रचना के लिये प्रसिद्ध रहा है। अतएव साहित्य सेवा की आकांक्षा रखनेवाले हमारे भाइयों को उचित है कि वे सर्वदा अन्यान्य देशीय साहित्यों से विशिष्ट ज्ञानोपार्जित कर हमारे शुद्ध हिंदी-साहित्य को परिपुष्टित करें, और इस भारत जैसे विशाल और विश्व-प्रसिद्ध देश के लिये गर्व का विषय बनावें।

साहित्य में नवीनता का प्रवाह और उसके अवरोध

हमें यह आश्चर्य और अत्यन्त दुःख होता है कि हिंदी साहित्य की वर्तमान संकुचित अवस्था पर लज्जित होते हुए भी हमारे कई एक लब्ध-प्रतिष्ठ, साहित्य-सेवी, पग-पग पर नवीनता के नाम पर चिढ़ते हैं। वास्तव में यदि देखा जाय, तो नवीनता कोई घृणित वस्तु नहीं है। नवीनता प्रकृति का सौंदर्य, विश्व के विकास सिद्धांत की प्रथम श्रेणी और ईश्वर की विभूतियों के विकास का सीधा मार्ग तथा साधन है। नवीनता के बिना साहित्य और काव्य नीरस और रूखे प्रतीत होते हैं। नवीनता रुचि और रस की जननी है। तभी तो एक संस्कृत के महाकवि ने उसको काव्य की आत्मा, 'रमणीयता' का साक्षात्स्वरूप दे दिया था, यथा 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः'। हाँ, नवीनता का तब तक हमें विरोध अवश्य करना चाहिए, जब तक वह निरा भद्दा अनुकरण मात्र हो, अथवा निरुपादेय हो। अन्य किसी कारणवश नवीनता का विरोध करना अथवा उसके प्रति विरक्ति के भाव प्रकट करना साहित्य तड़ाग के समस्त जलागम मार्गों का अवरोध करना मात्र होगा। अन्य किसी साहि-

रियकइानिप्रद कारण के न होते हुए केवल यों ही नवीनता को बुरा बताना, अपने हृदय में पैठी हुई असामर्थ्य और तज्जन्य ईर्ष्या के भावों का परिचय-मात्र देना है। हमारी समझ में, प्रतिभा के प्रथम स्फुरणकाल में, कई एक युवक भी नवीन-नवीन साहित्यिक आदर्शों को हृदय में भरे हुए साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण होकर नए-नए साहित्यागों को पूर्ण करने के लिये तभी उद्यत हो जायँगे, जब उनकी कोमल (Sensitive) आकांक्षाओं और उच्च आदर्शों का विरोध करनेवाले जटिल-बुद्धि और जड़-हृदय दुरालोचक अपना हठ छोड़कर उनका स्वागत करने लगेंगे। क्या हमें यह मालूम नहीं है कि इसी प्रकार की कोमल महत्त्वाकांक्षिणी युवा प्रतिभाओं के तिरस्कार-जन्य दुराशिष् से हमारे हिंदी-साहित्य की आज यह अधोगति हो रही है? क्या हमें अब भी, 'तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा क्षारं जलं कापुरुषा पिबन्ति' वाली उक्ति को हृदय में रखकर अपनी पूर्व कृत अनुदारताओं और पापों का प्रायश्चित्त नहीं कर डालना चाहिए। संसार के और-और साहित्यों की ओर देखकर भी हमको अपनी आत्मघातिनी नीति को बदल देना आवश्यक प्रतीत होता है। क्या हमें संसार का इतिहास प्रत्यक्ष प्रमाणित नहीं कर बताता है कि अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ कवि और साहित्य सेवियों के प्रति इस प्रकार का अत्याचार करने के लिये आज भी अँगरेज़ी साहित्य, फ्रेंच साहित्य, संस्कृत, ग्रीक और लैटिन साहित्य, यही क्यों, पृथ्वी-मंडल के प्रायः समस्त साहित्य लज्जा के मारे नतमस्तक हो रहे हैं। क्या हमें, डांटे, शेक्सपियर, वर्डस्वर्थ, शैली, कीट्स, चैटरटन, भवभूति और भास इत्यादि कविवरों के दृष्टांत शिक्षा देने को पर्याप्त नहीं हैं? क्या महाकवि भवभूति की, "उत्पत्स्यते मम कोऽपि समानधर्मा, कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" यह गर्वपूर्ण अपील हमारे मन के मोह को नहीं मिटा सकती? यदि हमारी ऊपर लिखी हुई अपील में

कुछ भी तल्लीन हैं, जो जिनके कंधों पर साहित्य का भार और उत्तरदायित्व है, उनको अपनी वर्तमान प्रचलित नीति में, साहित्य की हित दृष्टि से, उदारता का समावेश अवश्य करना योग्य है। हमें विश्वास है कि आज अब चारों ओर देश सेवी महानुभावों का देशोत्थान के हेतु आन्दोलन से प्रयत्न हो रहा है, उस शुभ आशागर्भित काल में साहित्यिक विभूतियों को श्री उपनिषद् के इस वाक्य की निर्भीकोच्चस्वरेण घोषणा कर देनी उचित है—"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"

रसिकता का साहित्य में स्थान

प्रकृत प्रसंग के उपलक्ष में विनय करते हुए तथा रसिकानी को भेंट करते हुए हम पाठकों के प्रति अपने मंतव्य को संक्षेप में प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। 'रसिकानी' के लेखकों ने उसे लिखने में और साहित्य-क्षेत्र में उपस्थित करने में आलोचनात्मक दृष्टि को ही प्रधानता दी है। इसे भेंट करते हुए कवि होने का अथवा निर्दिष्ट आदर्श के अनुसार समालोचक होने का वृथा गर्व वे नहीं करते। उन्होंने तो केवल इस रोचक आलोचना के नवीन मार्ग का उद्घाटन कर प्रतिभासम्पन्न कवियों और आलोचकों के प्रति प्रयोगात्मक (Practical) रूप से यह निवेदन करना चाहा है, जिससे कि वर्तमान और भविष्य के उज्ज्वल पथ प्रदर्शक, साहित्य-सेवक इस मार्ग को आदर्श तक पहुँचाने का चेष्टा करें। यों तो हमारे हिंदी-साहित्य में अभी कई अंग रिक्त हैं, जिनको केवल यथार्थ प्रयास और सच्ची चेष्टा के बल हमारे उत्साही विद्वान् परिपूर्ण कर सकते हैं। हम कहाँ तक गिनाएँ, अपने विविध अंगों और प्रभेदों के सहित नाटक साहित्य, गल्प साहित्य, निबंध, आलोचना, पत्र साहित्य, जीवन चरित्र (पर और स्वलिखित) इत्यादि सभी साहित्यांगों को परिपूर्ण करना हमारा धर्म है। इस सामाजिक युग में, जब कि हम समस्त संसार की उत्कृष्ट

प्रतिभाओं का मिलन घर बैठे नित्यप्रति पुस्तकों द्वारा कर सकते हैं, यदि हम आलस्य में बैठे रहे, तो अवश्य ही हमें पीछे पछताना पड़ेगा। हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने के लिये और भारत का अन्य राष्ट्रों की मंडली में मुख उज्ज्वल करने के लिये यह परमावश्यक है कि हम अभी से सजग और सचेष्ट हो जायँ। कर्मयोग में दृढ़ता के साथ प्रवृत्त होना हमारा धर्म है, फल जगन्नियता के अधीन है।

यह 'रतिरानी' रोचक आलोचना के अंतिम प्रकारांतर्गत एक अनुकरण-काव्य (Parody) है। अनुकरण काव्य किसे कहते हैं, इसका आदर्श लेखकों ने कहाँ से लिया है, इसकी उपादेयता के क्या प्रमाण हैं, हमारे पुराने संस्कृत साहित्यिक रीतिकार इस प्रकार के साहित्य की रचना करने के लिये अनुमति देते हैं अथवा नहीं, अनुकरण काव्य के पूर्व दृष्टांत भी हमारे साहित्य में कहीं मिलते हैं अथवा नहीं, प्रकृत पुस्तक के लिखने के क्या कारण हैं, तथा यह साहित्य की किस-किस प्रगति की रोचक आलोचना है—इन सब प्रश्नों का अति संक्षेप में हम पाठकों के समक्ष विवेचन करने का अब प्रयत्न करेंगे। पाठक-वर्ग पुस्तक को लेखकों की आकांक्षाओं के अनुकूल संपादित पावेगा अथवा नहीं, इस विषय में सहृदय पाठक ही प्रमाण हैं, हम कुछ नहीं कह सकते।

अनुकरण-काव्य

हिंदी साहित्य के लिये अनुकरण काव्य (Parody) एक बिलकुल नवीन काव्यांग है। न तो इस साहित्यांग का यही नामोल्लेख ही, और न इसका यही रूप ही संस्कृत साहित्यकारों के विचारांतर्गत आया है। ऐसा कहने से हमारा आशय यह नहीं है कि इस ढंग के रोचक आलोचनात्मक साहित्य का हमारे विस्तृत संस्कृत साहित्य में अनस्तित्व है, और न हम यह कह सकते हैं कि इस ढंग के साहित्य के दृष्टांतों का ही अभाव है। इसके विपरीत, हम यह प्रमाणित करने

को देख सकेंगे कि इस आलोच्य विषय का प्रतिपादन करने में हमारे साहित्यकारों की साधना अनुकृति पथ पर कहाँ तक जा सकती है। किन्तु संस्कृत साहित्य में से लेकर हम कई एक शैलियाँ साधारणतः पाते हैं [illegible] उनका भाव स्पष्ट करेंगे, जिनके आधार पर साहित्य में परिहास [illegible] शब्द व्याजोपहासात्मक काव्य, यथा प्रहसन, भाण इत्यादि तथा अनुकरण-काव्य लिखे जा चुके हैं।

अस्तु! इस विवेचन भाग से और स्पष्ट यह कह देना चाहते हैं कि इस प्रकार के काव्य रचना के लिये हम आधुनिक अँगरेजी साहित्य के उतने ही ऋणी हैं, जितने कि हमारे पुराने संस्कृत साहित्य के। इसका आदर्श हमने अँगरेजी और संस्कृत दोनों साहित्यों के अनुकूल स्थापित किया है। अतएव स्वाभाविक ही है कि हम अपने उपकारियों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करें, और उनकी निर्दिष्ट रीतियों का उल्लेख यहाँ करें।

अनुकरण-काव्य की परिभाषा व व्याख्या

अँगरेजी में अनुकरण काव्य को हास्य-रस प्रधान काव्य माना है। साहित्यिक कृति विशेष को हास्य-रस पर अवलंबित कर गद्य अथवा पद्यमयी रोचक आलोचना की रचना करना ही अनुकरण काव्य को जन्म देना है। यहाँ हम जुलाई मास, सन् १८६५ ई०, के क्वार्टर्ली रिव्यू (Quarterly Review) के इस विषय के एक लेख में से उद्धृत कर अनुकरण-काव्य की परिभाषा को दे देना पर्याप्त समझते हैं। यथा—

"A Composition either in Verse or Prose modelled more or less closely upon an original work or class of original works—but the turning the serious sense of such originals into ridicule by its method of treatment"

अर्थात् "गद्य अथवा पद्यमयी ऐसी रचना जो किसी मौलिक ग्रंथ अथवा ग्रंथ-श्रेणी के आधार पर लिखी गई हो—परंतु अपने ढंग से इस प्रकार लिखा गई हो कि उन आधारभूत ग्रंथ अथवा ग्रंथ श्रेणी के गंभीर भावों को उपहास्य-स्वरूप में परिवर्तित कर दे।"

अवतरण का भाव स्वतः स्पष्ट है। परिभाषान्तर्गत Ridicule (उपहास) शब्द से हमारा क्या तात्पर्य है, यह भी स्पष्ट कर देना उचित है। इस विषय में हम एक प्रसिद्ध अँगरेज़-आलोचक व रीतिकार महोदय का बड़ा ही मनोहर, रुचिकर और विशद व्याख्या का यहाँ उल्लेख करते हैं, जिससे कि 'उपहास' शब्द का दोषापहरण होकर उसका समुज्ज्वल दिव्य स्वरूप प्रदर्शित होगा। यथा—

"Ridicule is Society's most effective means of curing inelasticity It explodes the pompous, corrects the well-meaning eccentric, cools the fantastical and prevents the incompetent from achieving success.

"Truth will prevail over it, falsehood will cower under it and it is true that when reason, indignation, entreaty and menace fail, ridicule will often cause a government to abandon a bill or a lover a mistress"

"अर्थात् किसी समाज के लिये उसकी स्थिति स्थापकत्व विहीन अवस्था का निराकरण करने के लिये उपहास सर्वश्रेष्ठ साधन है। उपहास पाखंडी लेखक का गर्व गलित करता है, हितैषी परंतु प्रमत्त लेखक का प्रमाद दूर करता है, मायावी लेखक के माया-जाल का खंडन करता है, और अयोग्य लेखकों को उनकी सरल सफलता प्राप्ति में बाधक होता है।"

इस पर यह आपत्ति होना स्वाभाविक है कि यह उपहास मूला और इसी लिए हुआ—यों—? "ना राम को इसके विरुद्ध सदा विजय हो जाती, परंतु समाज का स्वभाव यह अवश्यमेव कर दूंगा"।

अतः बलवत्तर उपहास साधन का साहित्यिक और सामाजिक उपादेयता के विषय में व्याख्याता कहता है

"यह सर्वथा सत्य जानो कि जब विवेक, राग विनय और प्रपंच (अर्थात् हास्य, राग, द्वेष, भय चार जाति के सभी प्रपात) इत्यादि सभी साधन निरन्तर प्रमादित हो जावें, उस समय उपहास किसी कल्याणकारिणी साधना के अनुकूल कठोर नियम को दूर करने में समर्थ हो सकता है, अथवा अमुक प्रेमी को अपना अधिकार चेष्टापूर्वक किसी प्रथमा को अधिकृत करने से रोक सकता है।"

अनुकरण की उपादेयता का दृष्टांत

यह तो हुआ उपहास साधन का महत्त्व और उसकी उपादेयता। दृष्टांत रूप में मोटे तौर से हम एक प्रसिद्ध पाश्चात्य कहानी का यहाँ उल्लेख करेंगे। सुनते हैं कि अमेरिका के एक धनी प्रतिष्ठित पुरुष की एक सयानी लड़की को बाल्यावस्था से एक बुरी बान पड़ गई थी। जब तब वह अपने भवों को बुरी तरह से सिकोड़कर अपना चिबुक को बड़ी बुरी तरह से आगे बढ़ाती हुई भयंकर और असाधारण रूप प्रदर्शित करती हुई देखी जाती थी। समाज में इसकी बड़ी चर्चा थी। लड़की यथेष्ट सुंदरी होने पर भी अपनी इस स्वभाव विकृति के कारण कुरूप समझी जाने लगी। उसका पिता इस अपयश के कारण अत्यंत दुःखित था। एक दिन अपने विद्वान् इष्ट मित्रों से सलाह कर उसने एक विचित्र आलमारी तैयार करवाई, जिसमें उसने दूर-दूर देशों से मंगवाकर बड़ी बड़ी भयोत्पादक और विकृत-रूप आकारवाली मूर्तियाँ और अन्यान्य कृतियाँ सजा दीं। अब वह लड़की जब जब उस आलमारी के पास जाती और उसमें रखी हुई

भयकर चीज़ों को देखती, तो बहुत भयभीत होती। सामने ही रखे हुए विशाल दर्पण में उन चीज़ों को और साथ ही अपनी विकृत आकृति को प्रतिफलित देखता, तब तो वह बहुत डरती और लज्जित भी होती। परिणाम यह हुआ कि समयातर में धीरे-धीरे उस लड़की की वह बुरी बान छूट गई, और भविष्य में वह समाज में प्रतिष्ठा की पात्र बनी।

इस दृष्टात से अनुकरण-आलोचना का हूबहू चित्र खिंच जाता है। वास्तव में सच्चे अनुकरण-काव्य के यही लक्षण और उसकी यही उपादेयता है।

अनुकरण काव्य की सीमाएं

अनुकरण काव्य की सीमा निर्धारित करते हुए अँगरेज़-रीतिकारों ने बहुत सोच-विचार और प्रयोगों (Experiments) के बाद में कुछ नियमों का यत्र तत्र उल्लेख किया है, जिनका भ्रम निवारणार्थ निर्देश कर देना हम यहाँ आवश्यक समझते हैं।

महामना सर क्विलर कूच का कथन है कि अनुकरणकर्ता को सदा अपने अनुकरणीकृत मूल लेखक के प्रति प्रेम और श्रद्धा के भाव रखने चाहिए। इस कथन से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अनुकरण काव्य का कर्तव्य केवल कुत्सित साहित्य के लेखकों के उत्साह का दमन करना ही नहीं है, वरन् अच्छे साहित्य के लेखकों को विख्यात करना तथा उनके प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ाना भी है। वे कहते हैं—

"Admiration and laughter are the very essence of the act or art of Parody Parody is concerned with poetry—preferably great poetry. It is playing with Gods"

"अर्थात् प्रशंसा और हास्य, ये दोनों व्यापार अनुकरण-कला

के निष्कर्ष निकले हैं। अनुकरण काव्य का घनिष्ठ संबंध सदा से बाद महाकाव्य के साथ रहता आया है। यह व्यापार देवताओं के साथ तारा करने के बराबर है।"

अनुकरणाधिकृत विषयों के संबंध में यहाँ कहा गया है कि धार्मिक कार्यों अथवा हृदय के गंभीर मानसिक भावों (Sentiments) का अनुकरण करना सर्वथा अनुपयुक्त है। इसीलिए अँगरेज़ी-साहित्य में लार्ड टैनिसन की धार्मिक कविता "Crossing the Bar" को अनुकरणान्तर्गत विषयों से बाहर निकाला है। इसी प्रकार हमारी समझ में, कालिदास के रघुवंश और कुमारसंभव, जगन्नाथ पंडितराज का गंगालहरी, रवीन्द्र की गीतांजलि और साधना, तुलसीदासजी की रामायण, सूरदासजी के प्रेमसागर और आधुनिक हिंदी कवियों में 'हरिऔध'जी के प्रियप्रवासान्तर्गत गंभीर मानसिक और धर्म-विषयक भावों का उपहासात्मक अनुकरण करना सर्वथा अनुपयुक्त और घृणा है।

आदर्श अनुकरणकर्ता

अब प्रश्न यह होता है कि ऐसे पवित्र और आदर्श साहित्यांग को परिपूरित करने का अधिकारी लेखक कौन हो सकता है? स्वाभाविकतः उत्तर यही है कि वही जिसके हृदय में साहित्य-सेवा की सच्ची, स्वर्गीय दृढ़ धारणा विद्यमान है; जो मूल लेखक के काव्य से पूर्णतया अवगत है और जिसे साहित्य के सच्चे हिताहित का ज्ञान है। वही अनुकरण काव्य की कला को जान सकता है। वही विवेक कर सकता है कि कौन से कवि की रचना का प्रशंसा गर्भित अनुकरण करके उसकी ख्याति प्रसारित करनी चाहिए और कौन-से का दमन।

अनुकरण-काव्य के प्रकार, भेद

अँगरेज़ी में अनुकरण काव्य के तीन अंग माने गए हैं। यथा—

(१) शब्दानुकरण प्रधान काव्य, (२) भावानुकरण प्रधान काव्य और (३) शैल्यानुकरण-प्रधान काव्य ।

शब्दानुकरण काव्य (Verbal Parody)

शब्दानुकरण-प्रधान काव्य (Verbal Parody) वह है, जिसमें किसी प्रतिष्ठित कवि की सुप्रतिष्ठित कविता के आधार को लेकर जहाँ तहाँ थोडे-से शब्द इस ढग से बदल दिए जायँ कि मूल को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट न करते हुए भी उससे अन्यार्थ प्रतिपादित कर हास्य-रस का उत्पादन कर दिया जाय। यह भेद अति सरल साध्य और साधारण है। यथा—अँगरेज़-कवि पोप का एक छंद और उसका शब्दानुकरण—

"Here shall the Spring her earliest *Sweets* bestow,
Here the first roses of the year shall blow"

(Pope)

तथा—

"Here shall the Spring her earliest Coughs bestow,
Here the first noses of the year shall blow"

दूसरा दृष्टांत है महाकवि वर्डस्वर्थ की सर्वप्रसिद्ध कविता—यथा—

मौलिक—

"My heart leaps up when I behold
A rainbow in the sky,
So was it when my youth began,
So is it now I am a man
So be it when I shall grow old or let me die"

विकृतावस्था में—

My heart leaps up when I behold
A mince pie on the table
So was it when my youth began

[illegible]
[illegible]

उपरोक्त शब्दपरिवर्तन में विशेषता यह है कि महाकवि वर्ड्सवर्थ की उद्धृत कविता की नहीं, वरन् उनके सिद्धान्तों की हँसी उड़ाई गई है। देखिए, केवल दो ही शब्दों के परिवर्तन से हास्य रस की उत्पत्ति किस विचित्र ढंग से की गई है। अनुकरणकर्त्ता ने पाप महाराज को पापआत्मा का पात्र बना दिया है। यदि वे सच्चे कवि होते (जिसमें कि अब शंका की जाती है) तो उनकी ये दो पंक्तियाँ इतना रसविहीन और भद्दा न होतीं। तभी तो अनुकरणकर्त्ता ने परिवर्तन के द्वारा पवन की जगह शरद् ऋतु का आरोपण करके कवि के प्रकृति हृदय की हँसी उड़ाई है। वास्तव में ऐसी ही कविता की अनुकरणात्मक आलोचना होनी चाहिए। ये ही अनुकरण के उपयुक्त विषय हैं। अब यदि कोई अज्ञानवश अनधिकार चेष्टा करे और महाकवि वाल्मीकि की इन मार्मिक भावपूर्ण दो आदि काव्य पंक्तियों का अनुकरण कर बैठे, तो ऐसा होना असंभव है—

मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।

उपरोक्त दो प्रकार के भिन्न भिन्न काव्यों का परिशीलन कर पाठकों को यह ज्ञात हो गया होगा कि अनुकरण काव्य की सीमा के अंतर्गत कौन-कौन-से विषय होते हैं और कौन कौन नहीं।

महाकवि वर्ड्सवर्थ के बहुत से नूतन प्रतिपादित काव्य सिद्धान्तों में एक आन्दोलनकारी सिद्धान्त यह भी था कि वे कविता और गद्य की शब्द-रचना में कोई भेद नहीं मानते थे, और गंभीर-से-गंभीर, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म काव्य प्रतिभा को प्रकट करने के लिये साधारण-से-साधारण जनता की बोल-चाल की सरल भाषा के प्रयोग करने के पक्ष में थे। उनके ये विचार उस समय के आलोचकों को बिलकुल

नवीन, क्रांतिकारी, और असाध्य से जान पड़े। अतएव उनको ठीक न जँचे। ध्यान रहे कि ऊपर उद्धृत आलोचनात्मक शब्दानुकरण कवि के केवल उस मतव्य (Theory) की पोल खोलने के हेतु किया गया है, अन्यथा भाव-सौंदर्य और स्वाभावोक्ति की दृष्टि से तो उद्धृत मौलिक कविता अँगरेज़ी भाषा की सर्वसरल और सर्वश्रेष्ठ भावपूर्ण कविताओं में उच्च-कोटि की गिनी जाती है।

अब दुरुपयुक्त अनुकरण-काव्य का भी एक दृष्टांत लीजिए। कारण, अँधेरा और उजेला—दोनों का अनुभव किए बिना, उजेले का पूरा मूल्य ज्ञात नहीं होता। हम यहाँ Mr Stoddard Walker की मावसफ़ोर्ड बुक ऑफ़ इँगलिश वर्स (Moxford Book of English Verse यह शीर्षक भी The Oxford Book of English Verse का अनुकरण है) में से आधुनिक आयरलैंड के कविवर यीट्स महोदय की सर्वश्रेष्ठ कविता "The Lake Isle of Innesfree" तथा उसका भद्दा अस्पृहणीय अनुकरण उद्धृत करते हैं—

मूल-पद्य—

"I will arise and go now, and go to Innesfree
And a small cabin build there, of clay and wattles made
Nine bean rows will I have there, a hive for the honey bee
And live alone in the bee-loud glade"

अनुकरण—

"I will arise now and go to Innesfree
And a small table order, with beer in bottles laid
Nine Beanos will I have there, a hut for the busy bee
And drink alone in the B Y glade"

उद्धृत मूलपद्य अपने भावगांभीर्य और आध्यात्मिक विचार-सौंदर्य के लिये आधुनिक अँगरेज़ी कविता के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में से एक समझा

जाता है। अनुकरणकर्त्ता ने इस परम पवित्र स्वयंसिद्ध, देव तुल्य भावों को विकृत और विलिप्त कर कैसी अनधिकार चेष्टा की है और परिहासजन्य कैसी यहाँ असफलता प्राप्त की है, यह बात पाठक स्वयं जान गए होंगे। जैसा कि हम ऊपर 'परिहास' शब्द की व्याख्या में कह आए हैं—Truth will prevail over it अर्थात् सत्य की उसके (झूठे परिहास के) विरुद्ध सदा विजय होगी—उसका यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रसिद्ध पाश्चात्य कवियों का भी अनुकरण किया जा चुका है। टैनिसन की प्रसिद्ध कविता "The Brook" का अनुकरण काउपरक्राफ्ट ने बड़े रोचक ढंग से किया है। पाठक इसे चाहें समालोचनार्थ ऑक्सफोर्ड सीरीज़ में प्रकाशित The Century of Parody पुस्तक में देखें।

भावानुकरण प्रधान काव्य

दूसरा प्रकार है भावानुकरण-प्रधान काव्य (Sense Rendering Parody) यह भेद उत्तमतर कोटि का है और कष्टसाध्य है। किसी सुप्रसिद्ध कवि अथवा गद्य लेखक का भावानुकरण करना उसी विद्वान् अनुकरणकर्त्ता के लिये सुसाध्य हो सकता है, जो स्वयं बड़ा कवि अथवा गद्यलेखक है, और जो मूलकवि के साथ इतना घनिष्ठ संबंध रखने लग गया है कि उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया है। तभी तो वह मूलकवि के भावों की अर्थात् उसकी आत्मा के विचारों की नकल कर सकता है, अन्यथा वह इस शुभ कार्य का अधिकारी ही नहीं हो सकता। हम यहाँ पर कुछ दृष्टांत देकर यह बतावेंगे कि यह दुःसाध्य कार्य किस प्रकार संपादित होता है।

आधुनिक समय के अनुकरण-कवि हिल्टन (Hilton) और स्टीफेंस (Stephens) को इस प्रकार का अनुकरण करने में

नवीन, क्रांतिकारी, और असाध्य से जान पड़े। अतएव उनको ठीक न जँचे। ध्यान रहे कि ऊपर उद्धृत आलोचनात्मक शब्दानुकरण कवि के केवल उस मतव्य (Theory) की पोल खोलने के हेतु किया गया है, अन्यथा भाव सौंदर्य और स्वाभावोक्ति की दृष्टि से तो उद्धृत मौलिक कविता अँगरेज़ी भाषा की सर्वमरल और सर्वश्रेष्ठ भावपूर्ण कविताओं में उच्च-कोटि की गिनी जाती है।

अब दुरुपयुक्त अनुकरण-काव्य का भी एक दृष्टांत लीजिए। कारण, अँधेरा और उजेला—दोनों का अनुभव किए विना, उजेले का पूरा मूल्य ज्ञात नहीं होता। हम यहाँ Mr Stoddard Walker की माक्सफ़ोर्ड बुक ऑफ़ इँगलिश वर्स (Moxford Book of English Verse यह शीर्षक भी The Oxford Book of English Verse का अनुकरण है) में से आधुनिक आयरलैंड के कविवर यीट्स महोदय की सर्वश्रेष्ठ कविता "The Lake Isle of Innesfree" तथा उसका भद्दा अस्पृहणीय अनुकरण उद्धृत करते हैं—

मूल-पद्य—

> "I will arise and go now, and go to Innesfree
> And a small cabin build there, of clay and wattles made
> Nine bean rows will I have there, a hive for the honey bee
> And live alone in the bee-loud glade"

अनुकरण—

> "I will arise now and go to Innesfree
> And a small table order, with beer in bottles laid
> Nine Beanos will I have there, a hut for the busy bee
> And drink alone in the B Y glade"

उद्धृत मूलपद्य अपने भावगांभीर्य और आध्यात्मिक विचार-सौंदर्य के लिये आधुनिक अँगरेज़ी कविता के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में से एक समझा

जाता है। अनुकरणकर्त्ता ने उन पाप पङ्किल, स्वार्थलिप्त, द्वेष दुष्ट भावों का चित्रण और विरोध कर कैसी अनधिकार चेष्टा की है और परिणाम कैसी भद्दी असफलता प्राप्त की है, यह बात पाठक स्वयं जान गए होंगे। जैसा कि हम ऊपर 'परिहास' शब्द की व्याख्या में कह आए हैं—Truth will prevail over it अर्थात् सत्य की उसके (झूठे परिहास के) विरुद्ध सदा विजय होगी—इसका यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रसिद्ध पाश्चात्य कवियों का भी अनुकरण किया जा चुका है। टैनीसन की प्रसिद्ध कविता "The Brook" का अनुकरण काफ़रसन ने बड़े रोचक ढंग से किया है। पाठक यदि चाहें मनोरञ्जनार्थ ऑक्सफ़ोर्ड लन्दन में प्रकाशित The Century of Parody पुस्तक को देखें।

भावानुकरण प्रधान काव्य

दूसरा प्रकार है भावानुकरण-प्रधान काव्य (Sense Rendering Parody) यह भेद उच्चतर कोटि का है और कष्टतर साध्य है। किसी सुप्रसिद्ध कवि अथवा गद्य लेखक का भावानुकरण करना उसी विद्वान् अनुकरणकर्त्ता के लिये सुसाध्य हो सकता है, जो स्वयं बड़ा कवि अथवा गद्यलेखक है, और जो मूलकवि के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखने लग गया है कि उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया है। तभी तो वह मूलकवि के भावों की अर्थात् उसकी आत्मा के विकारों की नक़ल कर सकता है, अन्यथा वह इस शुभ कार्य का अधिकारी हो नहीं हो सकता। हम यहाँ पर कुछ दृष्टांत देकर यह बतावेंगे कि यह दुःसाध्य कार्य किस प्रकार संपादित होता है।

आधुनिक समय के अनुकरण-कवि हिल्टन (Hilton) और स्टीफेंस (Stephens) को इस प्रकार का अनुकरण करने में

नवीन, क्रांतिकारी, और असाध्य से जान पड़े। अतएव उनको ठीक न जँचे। ध्यान रहे कि ऊपर उद्धृत आलोचनात्मक शब्दानुकरण कवि के केवल उस मतव्य (Theory) की पोल खोलने के हेतु किया गया है, अन्यथा भाव सौंदर्य और स्वाभावोक्ति की दृष्टि से तो उद्धृत मौलिक कविता अँगरेज़ी भाषा की सर्वसरल और सर्वश्रेष्ठ भावपूर्ण कविताओं में उच्च-कोटि की गिनी जाती है।

अब दुरुपयुक्त अनुकरण-काव्य का भी एक दृष्टांत लीजिए। कारण, अँधेरा और उजेला—दोनों का अनुभव किए बिना, उजेले का पूरा मूल्य ज्ञात नहीं होता। हम यहाँ Mr Stoddard Walker की मावसफ़ोर्ड बुक ऑफ़ इँगलिश वर्स (Moxford Book of English Verse यह शीर्षक भी The Oxford Book of English Verse का अनुकरण है) में से आधुनिक आयरलैंड के कविवर योट्स महोदय की सर्वश्रेष्ठ कविता "The Lake Isle of Innesfree" तथा उसका भद्दा अस्पृहणीय अनुकरण उद्धृत करते हैं—

मूल-पद्य—

"I will arise and go now, and go to Innesfree
And a small cabin build there, of clay and wattles made
Nine bean rows will I have there, a hive for the honey bee
And live alone in the bee-loud glade"

अनुकरण—

"I will arise now and go to Innesfree
And a small table order, with beer in bottles laid
Nine Beanos will I have there, a hut for the busy bee
And drink alone in the B Y glade"

उद्धृत मूलपद्य अपने भावगांभीर्य और आध्यात्मिक विचार सौंदर्य के लिये आधुनिक अँगरेज़ी कविता के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में से एक समझा

जाता है। अनुकरणकर्त्ता ने उन दास पंडित स्पर्शनिषिद्ध, द्वेष पूर्ण भावों को चित्रण और चित्रित कर कैसी वाग्विकार चेष्टा की है और परिहासमय कैसी भरी सफलता प्राप्त की है, यह बात पाठक स्वयं जान गए होंगे। जैसा कि हम ऊपर 'परिहास' शब्द की व्याख्या में कह आए हैं—Truth will prevail over it अर्थात् सत्य की उस पर (झूठे परिहास के) विरुद्ध सदा विजय होगी—उसका यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रसिद्ध पाश्चात्य कवियों का भी अनुकरण किया जा चुका है। टेनीसन की प्रसिद्ध कविता "The Brook" का अनुकरण काडरहेड ने बड़े रोचक ढंग से किया है। पाठक वर्ग अपने मनोरञ्जनार्थ ऑक्सफर्ड सीरीज़ में प्रकाशित The Century of Parody पुस्तक को देखें।

भावानुकरण प्रधान काव्य

दूसरा प्रकार है भावानुकरण-प्रधान काव्य (Sense Rendering Parody) यह भेद उच्चतर कोटि का है और कष्टतर साध्य है। किसी सुप्रसिद्ध कवि अथवा गद्यलेखक का भावानुकरण करना उसी विद्वान् अनुकरणकर्त्ता के लिये सुसाध्य हो सकता है, जो स्वयं बड़ा कवि अथवा गद्यलेखक है, और जो मूलकवि के साथ इतना घनिष्ठ संबंध रखने लग गया है कि उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया है। तभी तो वह मूलकवि के भावों की अर्थात् उसकी आत्मा के विचारों की नकल कर सकता है, अन्यथा वह इस श्रम कार्य का अधिकारी ही नहीं हो सकता। हम यहाँ पर कुछ दृष्टांत देकर यह बतायेंगे कि यह दुःसाध्य कार्य किस प्रकार संपादित होता है।

आधुनिक समय के अनुकरण-कवि हिल्टन (Hilton) और स्टीफ़न्स (Stephens) को इस प्रकार का अनुकरण करने में

नवीन, क्रांतिकारी, और असाध्य से जान पड़े। अतएव उन
न जँचे। ध्यान रहे कि ऊपर उद्धृत आलोचनात्मक शब्दानुक
के केवल उस मतव्य (Theory) की पोल खोलने के हे
गया है, अन्यथा भाव सौंदर्य और स्वाभावोक्ति की दृष्टि
उद्धृत मौलिक कविता अँगरेज़ी भाषा की सर्वसरल और
भावपूर्ण कविताओं में उच्च-कोटि की गिनी जाती है।

अब दुरुपयुक्त अनुकरण-काव्य का भी एक दृष्टांत
कारण, अँधेरा और उजेला—दोनों का अनुभव किए विना
का पूरा मूल्य ज्ञात नहीं होता। हम यहाँ Mr Sto
Walker की सावसफ़ोर्ड बुक ऑफ़ इँगलिश वर्स (Mo
Book of English Verse यह शीर्षक भी The O
Book of English Verse का अनुकरण है) में से
आयरलैंड के कविवर यीट्स महोदय की सर्वश्रेष्ठ कविता
Lake Isle of Innesfree" तथा उसका भद्दा अ
अनुकरण उद्धृत करते हैं—

मूल-पद्य—

"I will arise and go now, and go to Innesfree
And a small cabin build there, of clay and wattle
Nine bean rows will I have there, a hive for the l
And live alone in the bee loud glade"

अनुकरण—

"I will arise now and go to Innesfree
And a small table order, with beer in bottles l
Nine Beanos will I have there, a hut for the l
And drink alone in the B Y glade"

उद्धृत मूलपद्य अपने भावगांभीर्य और आध्यात्मिक विच

जाता है। अनुकरणकर्त्ता ने उस [illegible] कविता के ऐसे सुन्दर भावों को विकृत और विकृत कर, कैसी अवहेलना पैदा की है और परिणाम कैसी अद्भुत हास्यजनकता प्राप्त की है, यह बात पाठक स्वयं जान गए होंगे। जैसा कि हम ऊपर 'परिहास' शब्द की व्याख्या में कह आए हैं—Truth will prevail over it अर्थात् सत्य की उसके (झूठे परिहास के) विरुद्ध सदा विजय होगी—उसका यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रसिद्ध पाश्चात्य कवियों का भी अनुकरण किया जा चुका है। टेनिसन की प्रसिद्ध कविता "The Brook" का अनुकरण काल्वरली ने बड़े रोचक ढंग से किया है। पाठक यदि चाहें तो [illegible] ऑक्सफोर्ड सीरीज़ में प्रकाशित The Century of Parody पुस्तक को देखें।

भावानुकरण प्रधान काव्य।

दूसरा प्रकार है भावानुकरण-प्रधान काव्य (Sense Rendering Parody) यह भेद उच्चतर कोटि का है और कष्टतर साध्य है। किसी सुप्रसिद्ध कवि अथवा गद्यलेखक का भावानुकरण करना उसी विद्वान् अनुकरणकर्त्ता के लिये सुसाध्य हो सकता है, जो स्वयं बड़ा कवि अथवा गद्यलेखक है, और जो मूलकवि के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखने लग गया है कि उसकी आत्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया है। तभी तो वह मूलकवि के भावों की अर्थात् उसकी आत्मा के विचारों की नकल कर सकता है, अन्यथा वह इस शुभ कार्य का अधिकारी हो नहीं हो सकता। हम यहाँ पर कुछ दृष्टांत देकर यह बतायेंगे कि यह दुःसाध्य कार्य किस प्रकार सम्पादित होता है।

आधुनिक समय के अनुकरण-कवि हिल्टन (Hilton) और स्टीफेंस (Stephens) को इस प्रकार का अनुकरण करने में

दूसरों की अपेक्षा ज़्यादा सफलता प्राप्त हुई है। हिल्टन ने अर्वाचीन काल के एक श्रेष्ठ अँगरेज़ी-कवि स्विनबर्न के काव्यमय व्यक्तित्व और उनकी समग्र काव्य प्रतिभा का यों रोचक अनुकरण किया है —

"Ah ! thy red lips, lascivious and luscious
With death in thou amorous kiss !
Cling round us and clasp us and crush us
With bitings of agonised bliss,
We are sick with poison of Pleasure
Dispense us the potion of pain
Ope thy mouth to the utmost measure
And bite us again"

इसे कहते हैं सच्चा और मार्मिक भावानुकरण। पद्यों का पूर्व भाग पढ़ते पढ़ते यह विश्वास हृदय पर दृढ़ जमने लगता है कि केवल स्विनबर्न ही— केवल "Atlanta in Calydon" काव्य के रचयिता ही यह रचना कर सकते थे। वही उनका स्वाभाविक ओज, वही सुसाध्य पद लालित्य और भाव विलास, वही उनकी अप्रतिहत भाव-शक्ति (force of Sentiment) और वही उनका अनिर्वचनीय, रस मय सरल सगीत प्रवाह, वही रति मूलक शृंगार रस जो उन्हें सर्व प्रिय था और वही अनुप्रास और श्लेषादि शब्दाडम्बरों का विचित्र चमत्कार—वास्तव में हूबहू उनकी आत्मा की खरी नक़ल (True Copy) है। यदि अब भी किसी को भ्रम हो, तो उनके बहुत से ग्रंथों को पढ़कर देखे। आख़िर, भेद अंतिम दो पंक्तियों में खुल ही जाता है। वहाँ तक पहुँचकर अनुकरणकर्ता अपने कठिनता से रोके हुए हास को अट्टहास में प्रकट कर देता है। "व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्नो वाकृते रासभो हत' वाली बात होती है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि उद्धृत अनुकरण स्विनबर्न कवि के किसी विशेष छंद अथवा छंद-समूह का नहीं है, वरन् उनकी समस्त

कल्पना का है। विक्टोरिया-कालीन में यह सर्वश्रेष्ठ भावमूलक अनुकरण कविताओं की कोटि में गिनाया जाता है। दूसरे अनुकरणकर्ता, जिन्होंने इस क्षेत्र में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की है, हैं स्टीफेन। इन्होंने अपनी Poetic Lament on the insufficiency of Steam Locomotive in the Lake district में, महाकवि वर्ड्सवर्थ की शैली, पद रचना, भाषा सरलता और विषय-सरलता इत्यादि की दृष्टि से, हूबहू नकल कर दी है। इस अनुकरण के विषय में आधुनिक आलोचक शिरोमणि सर आर्थर क्विलर कूच ने एक बार कहा था "Perfection of Parody" अर्थात् यह अनुकरण काव्य की श्रेष्ठता की चरमसीमा है।

जिस प्रकार पद्य काव्यों का रोचक आलोचनात्मक अनुकरण किया जाता है, उसी प्रकार गद्य-साहित्य का भी किया जा सकता है और किया जाता है। वर्तमान युग के प्रायः सभी बड़े-बड़े ख्यातनाम लेखकों का अनुकरण हो चुका है। मेरीडिथ, हार्डी, मैटरलिंक, चैस्टर्टन, बर्नार्ड शा, विलियम, पेटर, यीट्स तथा श्रीरवीन्द्रनाथ टागोर—इन सभी महोदयों ने अनुकरण द्वारा चिरविख्याति प्राप्त की है।

शैल्यानुकरण काव्य

तीसरा प्रकार है शैल्यानुकरण प्रधान काव्य (Style Parody)। यों तो यह उपभेद दूसरे प्रकार के व्यापक-स्वरूप के अंतर्गत आ ही जाता है, परन्तु तो भी पृथक् रूप में प्रसिद्ध प्रसिद्ध गद्य पद्य लेखकों की शैली का अनुकरण किए जाते देखा गया है। अतएव विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता न समझकर हम केवल इस प्रभेद के प्रमुख और सुविख्यात अनुकरणकर्ता तथा उनकी कई एक प्रसिद्ध रचनाओं का उल्लेख मात्र कर देना पर्याप्त समझते हैं।

अँगरेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास लेखक, कवि तथा गद्य लेखक एँड्रू लंग महोदय ने प्रीरैफ़ेलाइट संघ के नेता कवि डी० जी० राजैटी

महोदय का अनुकरण किया है, जो अत्यंत रोचक है। जान फिलिप्स ने "Splendid Shilling" में महाकवि मिल्टन की शैली का अत्यंत मनोहर अनुकरण किया है। इसी प्रकार, स्टीफस, सर ओवन सीमन और काल्वरली महोदयों ने पृथक् पृथक् कवियों और लेखकों की रोचक आलोचना करते हुए अनुकरण काव्य रचे हैं, जिनका कि अँगरेज़ी-साहित्य में अच्छा मान है। श्रीमैक्सबीरबौम महाशय ने जो आधुनिक समय के अँगरेज़ी निबंध लेखकों (Essayists) में अग्रगण्य हैं, तो इस ओर यहाँ तक विशेषता दिखलाई कि स्वरचित "Christmas Garlands" नामक पुस्तक में अपने समकालीन १६ लेखकों से अपनी अपनी शैली के अनुसार एक ही विषय अर्थात् "Christmas" पर १६ रोचक निबंध लिखवाए हैं, और उन सब पृथक् पृथक् शैलियों के लिखनेवाले स्वयं श्रीमैक्सबीरबौम हैं। इसी से प्रमाणित होता है कि श्रीमैक्सबीरबौम ने कहाँ तक इन सोलह लेखकों की शैली को अपनाने की शक्ति पैदा कर ली होगी। यह बात किसी जादूगर के खेल से कम विस्मयोत्पादक नहीं है। इसी प्रकार के उच्च कोटि के, शिक्षाप्रद और निर्दोष, मानव मस्तिष्क शक्तियों का विकास करनेवाले आमोद प्रमोदों में जिस दिन हिंदी पठित जनता रुचि और गति प्रदर्शित करने लगेगी, उस दिन से साहित्य की सर्वप्रियता और सामाजिक उपयोगिता अवश्य बढ़ जायगी और साहित्य तथा जीवन के बीच में पड़ी हुई पारस्परिक उदासीनता की वह भयकर दरार लुप्त हो जायगी कि जिसमें गिरकर आज भी हमारा साहित्य दीन हीन दशा में है।

रतिरानी के विषय में दो बातें

पाठको, यह 'रतिरानी' एक भावानुकरण प्रधान हास्य-मूलक अनुकरण काव्य (Parody) है। श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय महाकवि बिहारीलाल की कविता के असंख्य अनुकरणकर्ता, उत्तरकालवर्ती दोहाकार

कवियों की कविता को समझना कठिन है। बिहारी की कविता की समझ पाने के लिये ही उन्होंने यह प्रयास किया है और इसमें कहीं किसी दूसर का प्रभाव हम उनके ही भावों में दर्शित करना अपना कर्तव्य नहीं समझते हैं। हम यह पहले से ही मानने को तैयार हैं कि कवियों की शैली, पदावली और भाव सौष्ठव का अनुकरण करने में इसमें बहुत कुछ त्रुटियाँ भी होंगी, परन्तु इस ओर यह प्रथम प्रयास है। बहुत से अन्य अनुरोधक इस पुस्तक को देखकर उत्साहित होंगे। त्रुटि को पूर्ण करना अपना काम है। पदों के साथ उनकी भी लिखते हुए भी इसमें अनेक पद हिन्दी-साहित्य की एक प्रचलित प्रणालि का ध्यान भी रक्खा है। सतसई ग्रन्थ में लेखकों ने उन हमारे हिन्दी टीकाकारों की विविध शैली, अनुप्रास श्लेष और अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा, और पारिभाषिक शब्दों के समावेश से परिपूर्ण, अति विस्तारपूर्ण, अंत का अर्थ ही जिसे जानिवाला व्याख्या—अनुपात्य व्याख्या—का अनुकरण किया है। हमारा तो यह मत है कि बिहारीलाल ने दोहे जैसे छोटे छन्द में "गागर में सागर" भरकर साहित्य में जितना अद्भु-तीय चमत्कार पैदा किया है और अमर, स्थायी यश प्राप्त किया है, उसका ही अपयश, अपनी भद्दी और बेतुकी, व्यर्थ और अति-विस्तृत व्याख्या लिखकर, उस गागर के सागर को उड़ेल डालने का वृथा प्रयास कर इन आजकल सतसई टीकाकारों ने कमाया है और अपने-आप अपनी हँसी कराकर नाम मात्र में पाठक को धोखा दिलाया है। उतना वहीं ज्यादा अपयश उन नकटाक दोहाकार कवियों ने कमाया है, जिन्होंने बिहारी जैसा अननुकरणीय प्रतिभा का अनुकरण कर और दोहे जैसे छोटे छन्द ("देखत में छोटे लगै घाव करैं गंभीर" एवं, "सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर") का बनाना अत्यंत सरलसाध्य समझकर अपनी शिथिल, अनंबद्ध

अरुचिकर, नीरस, असंगत और फीकी काव्य-शक्ति का परिचय दिया है। इस प्रकार के नक्कालों से विहारी को सुरक्षित रखना प्रस्तुत प्रयास का मुख्य ध्येय है। ऐसा करने में हमारा इंगित किसी व्यक्ति विशेष टीकाकार अथवा दोहाकार कवि के प्रति नहीं है, और न हम केवल विहारी के टीकाकारों की प्रगति की आलोचना करने को ही उद्यत हुए हैं। प० पद्मसिंह शर्मा एवं 'रत्नाकर' को हम विहारी के आदर्श टीकाकार मानते हैं, परंतु उनकी विशद बुद्धि, गाम्भीर्य और पांडित्य पूर्ण व्याख्या की नक़ल कर दूसरे पद्मसिंह और 'रत्नाकर' कहलाने का ढोंग रचनेवाले मनमौजी और निरक्षर टीकाकारों को हँसना और सुधारना हमारा अधिकार और धर्म है। वास्तव में टीका का यह कुत्सित रूप विहारी के ढाई, तीन दर्जन टीकाकारों में इतना ज्यादा प्रकट नहीं हुआ है, जितना कि अन्यान्य कवियों की टीकाओं में विशेषतः उर्दू-कवियों के काव्यों की आधुनिक ढंग की 'चटपटी, मसालेदार' टीकाओं में। अतएव साधारणतः यह अनुकरण सभी प्रकार की असंगत (Irrelevant), बेतुकी (Far fetched), अतिविस्तृत (Prolix) और मनमौजी टीकाओं अथवा व्याख्याओं का है। व्यक्तिगत आक्षेप करना असभ्यता और अविनय की पराकाष्ठा होती है और ऐसे आक्षेपों को साहित्य में स्थान नहीं दिया जाता। अतएव हमें पूर्ण आशा है कि सहृदय पाठक इस क्षुद्र रचना में व्यक्तिगत आक्षेप ढूँढ़ने का व्यर्थ प्रयास न करेंगे। लेखकों ने केवल हिंदी साहित्य की साधारण प्रगतियों (General tendencies) को ध्यान में रखकर अनुकरण किया है।

संस्कृत-साहित्यकारों की अनुमति

हम ऊपर कह आए हैं कि अनुकरण काव्य एक हास्यरस प्रधान रोचक आलोचनात्मक काव्य है। यों तो यह काव्य-भेद हमारे पुराने रीतिकारों ने स्पष्ट रूप में कहीं गिनाया नहीं है, परंतु इसी प्रकार

वक्रोक्ति और रीति सम्बन्ध भेदों का भी नहीं गिनाया। रीतिकारों के ग्रंथों में इस प्रकार संक्षेप अथवा व्यास-समास के स्थान पर अनन्त शब्द भेदों की सूचना पाते हैं, जिनके विषय में उन्होंने नियम बनाना अनावश्यक समझा और जिनमें से प्रत्येक को उन्होंने व्यक्तिगत प्रतिभा पर निर्भर रक्खा है। जिसका प्रमाण यही है कि किसी साहित्य रीति के न होते हुए भी आगे चलकर आदर्श अनुकरण-काव्य के कई दृष्टान्त, रोचक और ऐसे पुराणाचार में हमें संस्कृत साहित्य में मिल सकेंगे। यहाँ पर हमारा मन्तव्य केवल इतना ही है कि पूर्वाचार्य किसी शास्त्र अथवा रीति के अभाव में, तथा तद्विषयक आलोचना तथा विशेषरूपेण रूपनिर्देश के अभाव में हमें यह प्रतीत है कि काव्य का यह भेद भारतीय शास्त्रकारों द्वारा अनुगत है और हम अपने इस कथन को प्रमाणित करने की चेष्टा करेंगे—

काव्य

"काव्यं रसात्मकं वाक्यम्" (विश्वनाथ) अर्थात् किसी भी रसात्मक वाक्य अथवा वाक्य-समूह को, चाहे वह गद्य हो अथवा पद्य, हम काव्य-संज्ञा से यथोचित कर सकते हैं।

रस

अब, 'रस' किसे कहते हैं ? विश्वनाथ कवि ने रस की व्याख्या यों की है—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा ;
रसतामेति रत्यादि स्थायिभावः सचेतसाम्।

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारीभावादि उपभेदों का आश्रय लेकर चेतनशील पुरुषों का, जो हृदयस्थ स्थायिभाव परिपक्वता को प्राप्त होता है, उसे "रस" कहते हैं। आगे चलकर रस के आध्यात्मिक दिव्य स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अरुचिकर, नीरस, असगत और फीकी काव्य-शक्ति का परिचय दिया है। इस प्रकार के नक्कालों से विहारी को सुरक्षित रखना प्रकृत प्रयास का मुख्य ध्येय है। ऐसा करने में हमारा इंगित किसी व्यक्ति विशेष टीकाकार अथवा दोहाकार कवि के प्रति नहीं है, और न हम केवल विहारी के टीकाकारो की प्रगति की आलोचना करने को ही उद्यत हुए हैं। प० पद्मसिंह शर्मा एव 'रत्नाकर' को हम विहारी के आदर्श टीकाकार मानते हैं, परतु उनकी विशद बुद्धि, गाभीर्य और पांडित्य पूर्ण व्याख्या की नक़ल कर दूसरे पद्मसिंह और 'रत्नाकर' कहलाने का ढोंग रचनेवाले मनमौजी और निरक्षर टीकाकारों को हँसना और सुधारना हमारा अधिकार और धर्म है। वास्तव में टीका का यह कुत्सित रूप विहारी के ढाई, तीन दर्जन टीकाकारों में इतना ज़्यादा प्रकट नहीं हुआ है, जितना कि अन्यान्य कवियों की टीकाओं में विशेषत उर्दू-कवियों के काव्यों की आधुनिक ढग की 'चटपटी, मसालेदार' टीकाओं में। अतएव साधारणत यह अनुकरण सभी प्रकार की असगत (Irrelevant), बेतुकी (Far-fetched), अतिविस्तृत (Prolix) और मनमौजी टीकाओं अथवा व्याख्याओं का है। व्यक्तिगत आक्षेप करना असभ्यता और अविनय की पराकाष्ठा होती है और ऐसे आक्षेपों को साहित्य में स्थान नहीं दिया जाता। अतएव हमें पूर्ण आशा है कि सहृदय पाठक इस क्षुद्र रचना में व्यक्तिगत आक्षेप ढूँढ़ने का व्यर्थ प्रयास न करेंगे। लेखकों ने केवल हिंदी साहित्य की साधारण प्रगतियों (General tendencies) को ध्यान में रखकर अनुकरण किया है।

संस्कृत-साहित्यकारों की अनुमति

हम ऊपर कह आए हैं कि अनुकरण काव्य एक हास्यरस प्रधान रोचक आलोचनात्मक काव्य है। यों तो यह काव्य-भेद हमारे पुराने रीतिकारों ने स्पष्ट रूप में कहीं गिनाया नहीं है, परतु इसी प्रकार

इन्होंने और और साहित्य भेदों का भी बड़ा विस्तार। रीतिकारों के ग्रंथों में हम लक्षण उदाहरण अथवा रस-नायिका के स्थान पर अब काव्य-भेदों की सूचना पाते हैं, जिनके विषय में इन्होंने विशद बताना अनावश्यक समझा और जिनको वे व्यक्ति की स्वाधीन प्रतिभा पर निर्भर रखते हैं। जिसका प्रमाण यह है कि किसी साहित्य रीति के न होते हुए भी आगे चलकर आधुनिक अनुभव काव्य के कई रूप, रोचक और अन्य सुरुचिपूर्ण में इसे साहित्य में मिल सकेंगे। यहाँ पर हमारा आशय केवल इतना ही है कि पूर्वकालीन किसी शास्त्र अथवा रीति के अभाव में, तथा तद्-विषयक सामान्यतया तथा विशेषरूपेण रूपनिर्देश के अभाव में, इसे यह प्रतीत है कि काव्य का यह भेद आलोच्य शास्त्रकारों द्वारा अनुमत है और हम अपने इस कथन को प्रमाणित करने की चेष्टा करेंगे—

काव्य

"काव्यं रसात्मकं वाक्यम्" (विश्वनाथ) अर्थात् किसी भी रसात्मक वाक्य अथवा वाक्य-समूह को, चाहे वह गद्य हो अथवा पद्य, हम काव्य-संज्ञा से सम्बोधित कर सकते हैं।

रस

अब, 'रस' किसे कहते हैं? विश्वनाथ कवि ने रस की व्याख्या यों की है—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा ;
रसतामेति रत्यादि स्थायिभावः सचेतसाम् ।

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारीभावादि उपभेदों का आश्रय लेकर चैतन्यशील पुरुषों का, जो हृदयस्थ स्थायिभाव परिपक्वता को प्राप्त होता है, उसे "रस" कहते हैं। आगे चलकर रस के आध्यात्मिक दिव्य स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

रसस्वरूप

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मय ,
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर ।
लोकोत्तरचमत्कारप्राण कैश्चित् प्रमातृभि ;
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रस. ।

अर्थात् अन्तरात्मा से प्रकाशित होने के कारण यह रस अखण्ड है—स्वयं प्रकाशमान है—आनन्द और चैतन्यस्वरूप है। रसोद्रेक के समय अन्य बाह्य विषय के स्पर्शानुभव से शून्य और ब्रह्मानन्द के सदृश अनुभववाला है। अलौकिक चित्तविकासजन्य चमत्कार ही इसके प्राण हैं, और इसका अनुभव केवल कई एक प्रतिभासपन्न हृदयों में होता है। स्वाकारवत् होने के कारण यह रस एक ही बार अकेला अनुभव किया जाता है।

आगे चलकर ज्ञानतादात्म्य के द्वारा साहित्यकार ने इस रस का स्वप्रकाशत्व और अखण्डत्व भी सिद्ध किया है।

यह तो हुआ रस का स्वरूप-वर्णन। रस नव प्रकार के होते हैं—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ,
जुगुप्साविस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ता शमोऽपि च ।

प्रकृत विषयान्तर्गत आए हुए हास्य रस का निरूपण करते हुए साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—'वागादि वैकृताच्चेतो विकासो हास इष्यते'' अर्थात् वचनादि विकृति-जन्य चित्त के विकास को हास कहते हैं। ''वागादि वैकृतात्' में सभी प्रकार के (नोट—अनुकरण भी एक प्रकार की विकृति है) अनुकरण व्याप्त हैं, यथा—शब्दविकृति = शब्दानुकरण , भावविकृति = भावानुकरण और शैली-विकृति = शैल्यानुकरण ।

आगे चलकर रसांगों का विवेचन करते हुए रीतिकार हास रस की

उत्पत्ति, विकास और परिपूर्ति के क्रमशः ये लक्षण बताता है, जिनका यथास्थान प्रयोग कर हम अनुकरण काव्य (Parody) को हास्य-रस प्रधान एक नूतन काव्यांग प्रमाणित करेंगे—

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत् ;
हासो हास्यस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः ।
विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः ;
तमत्रालम्बनं प्राहुः तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।
अनुभावोऽक्षिसङ्कोचवदनस्मेरतादयः ,
निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः ।

अर्थात् विकृत (१) आकार, (२) वाणी, (३) वेश और (४) चेष्टा, इनके तादृश्य अर्थात् अनुकरण से (कुहकात्) हास रस उत्पन्न होता है। (श्रव्य और दृश्य दोनों प्रकार के काव्यों तथा गद्य और पद्य दोनों शैलियों में यह हास्य-रस प्रदर्शित हो सकता है—यह टीकाकार का मत है) जिसके अंग इस प्रकार प्रतिपादित किए जाते हैं—

स्थायि-भाव* हास है। विभाव† के दो भेद हैं—आलम्बन और उद्दीपन। जिस वस्तु अथवा विकृताकारवाग्वेशचेष्टा-जनक भाव को देखकर देखनेवाले के मन में तादृश्यानुकरण करने की प्रेरणा हो, उस वस्तु अथवा भाव को इस रस का आलम्बन‡ कहते हैं और कार्य रूप उस

---

* निर्विकारात्मके चित्ते भाव प्रथम विक्रिया—सा० द० प० ३ श्लो० १२६।

† रत्याद्युद्बोधकालाके विभावा काव्य नाट्ययो —सा० द० प० ३ श्लो० ६१

‡ आलम्बन नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्—सा० द० प० ३ श्लो० ६३।

रसस्वरूप

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशादेव चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित प्रमातृभिः,
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।

अर्थात् अंतरात्मा से प्रकाशित होने के कारण यह रस अखण्ड है—स्वयं प्रकाशमान है—आनन्द और चैतन्यस्वरूप है। रसोद्रेक के समय अन्य बाह्य विषय के स्पर्शानुभव से शून्य और ब्रह्मानन्द के सदृश अनुभववाला है। अलौकिक चित्तविकासजन्य चमत्कार ही इसके प्राण हैं, और इसका अनुभव केवल कई एक प्रतिभासपन्न हृदयों में होता है। स्वाकारवत् होने के कारण यह रस एक ही बार अकेला अनुभव किया जाता है।

आगे चलकर ज्ञानतादात्म्य के द्वारा साहित्यकार ने इस रस का स्वप्रकाशत्व और अखण्डत्व भी सिद्ध किया है।

यह तो हुआ रस का स्वरूप वर्णन। रस नव प्रकार के होते हैं—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा,
जुगुप्साविस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च।

प्रकृत विषयांतर्गत आए हुए हास्य रस का निरूपण करते हुए साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—"वागादि वैकृताच्चेतो विकासो हास इष्यते" अर्थात् वचनादि विकृति जन्य चित्त के विकास को हास कहते हैं। "वागादि वैकृतात्" में सभी प्रकार के (नोट—अनुकरण भी एक प्रकार की विकृति है) अनुकरण व्याप्त हैं, यथा—शब्द-विकृति = शब्दानुकरण, भावविकृति = भावानुकरण और शैली-विकृति = शैल्यानुकरण।

आगे चलकर रसांगों का विवेचन करते हुए रीतिकार हास रस की

उत्पत्ति, विकास और परिपुष्टि के प्रसंग में स्पष्ट बताया है, जिसका यथास्थान प्रयोग कर हम अनुकरण-काव्य (Parody) को हास्य-रस प्रधान एक नूतन काव्यांग प्रमाणित करेंगे—

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत् ।
हासो हास्यस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः ।
विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः ।
तमत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।
अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः ,
निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः ।

अर्थात् विकृत (१) आकार, (२) वाणी, (३) वेश और (४) चेष्टा, इनके तादात्म्य अर्थात् अनुकरण से (कुहकात्) हास्य रस उत्पन्न होता है । (श्रव्य और दृश्य दोनों प्रकार के काव्यों तथा गद्य और पद्य दोनों शैलियों में यह हास्य-रस प्रदर्शित हो सकता है—यह टीकाकार का मत है) जिसके अंग इस प्रकार प्रतिपादित किए जाते हैं—

स्थायि-भाव* हास है । विभाव† के दो भेद हैं—आलम्बन और उद्दीपन । जिस वस्तु अथवा विकृताकारवाग्वेशचेष्टा-जनक भाव को देखकर देखनेवाले के मन में तादात्म्यानुकरण करने की प्रेरणा हो, उस वस्तु अथवा भाव को इस रस का आलम्बन‡ कहते हैं और कार्य रूप उस

* निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया—सा० द० प० ३ श्लो० १२६ ।

† रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः—सा० द० प० ३ श्लो० ६१

‡ आलम्बनं नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्—सा० द० प० ३ श्लो० ६२ ।

चेष्टा को उद्दीपन* कहते हैं। ("चेष्टा" के इस अर्थ के लिये देखो, दृष्टान्त यथा—मनु १-५२" यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्") आँखों का सकोच, वदन अथवा मुख मण्डल पर हँसी के विकास इत्यादि विकारो (Expressions) को अनुभाव† कहते हैं। और निद्रा, आलस्य, अवहित्था‡ इत्यादि व्यापार व्यभिचारी¶ भाव हैं।

अब यदि प्रयोगात्मक (Practical application) सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो "विकृताकारवाग्वेशचेष्टादे कुहकात्" इस चरण में हमारे पूर्व निर्दिष्ट अनुकरण-काव्य (Parody) के तीनों भेद ज्यों त्यों विद्यमान हैं। यथा—भाव के 'वेश' अर्थात् शब्द—उसके विकार-जन्य तादृश्यानुकरण (कुहुकात्) को हमने शब्दानुकरण प्रधान हास्य रस-गर्भित काव्य (Verbal Parody) कहा है।

भाव के 'आकार' अर्थात् भावार्थ अथवा भावाशय (Sense) उसके विकार जन्य तादृश्यानुकरण को भावानुकरण प्रधान हास्य गर्भित काव्य (Sense Rendering Parody) कहा है।

और भाव के "वाक्" अर्थात् शैली उसके विकार-जन्य तादृश्या

---

* उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये—सा० द० प० ३ श्लो० १६०।

† उद्बुद्धकारणै स्वै स्वै, र्बहिर्भाव प्रकाशयन्,
लोके य कार्यरूप सो अनुभाव काव्यनाट्ययो।
—सा० द० प० ३ श्लो० १६२

‡ किसी आतरिक भाव के गोपन व्यापार को अवहित्था कहते है।

¶ विशेषादाभिमुख्येन, चरन्तो व्यभिचारिण,
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना स्त्रयस्त्रिंशच्चतद्भिदा।
—सा० द० प० ३ श्लो० १६८

चेष्टा को उद्दीपन* कहते हैं। ("चेष्टा" के इस अर्थ के लिये देखो, दृष्टांत यथा—मनु १-५२" यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्") आँखों का सकोच, वदन अथवा मुख मडल पर हँसी के विकास इत्यादि विकारों (Expressions) को अनुभाव† कहते हैं। और निद्रा, आलस्य, अवहित्था‡ इत्यादि व्यापार व्यभिचारी¶ भाव हैं।

अब यदि प्रयोगात्मक (Practical application) सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो "विकृताकारवाग्वेशचेष्टादे: कुहकात्" इस चरण में हमारे पूर्व निर्दिष्ट अनुकरण काव्य (Parody) के तीनों भेद ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। यथा—भाव के 'वेश' अर्थात् शब्द—उसके विकार जन्य ताद्दश्यानुकरण (कुहुकात्) को हमने शब्दानुकरण प्रधान हास्य रस गर्भित काव्य (Verbal Parody) कहा है।

भाव के 'आकार' अर्थात् भावार्थ अथवा भावाशय (Sense) उसके विकार जन्य ताद्दश्यानुकरण को भावानुकरण प्रधान हास्य गर्भित काव्य (Sense Rendering Parody) कहा है।

और भाव के "वाक्" अर्थात् शैली उसके विकार-जन्य ताद्दश्या

---

* उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये—सा० द० प० ३ श्लो० १६०।

† उद्बुद्धकारणै: स्वै स्वै, बहिर्भाव प्रकाशयन्,
लोके य: कार्यरूप सो अनुभाव काव्यनाट्ययो।
—सा० द० प० ३ श्लो० १६२

‡ किसी आंतरिक भाव के गोपन व्यापार को अवहित्था कहते हैं।

¶ विशेषादाभिमुख्येन, चरन्तो व्यभिचारिण:,
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना त्रैयास्त्रिंशच्चतद्भिदा।
—सा० द० प० ३ श्लो० १६८

पुस्तक का शैल्यनुकरण प्रधान हास्य गर्भित काव्य (Style Parody) कहा है।

रतिरानी के विषय में आत्म प्रदीप

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, यह पुस्तक रतिरानी एक हास्य-गर्भित भावानुकरण प्रधान काव्य है। बंगला भाव के आधार का विषयानुकरण इसमें किया गया है और यह भी दो पृथक् ढंगों से। एक उपहास मूलक अनुकरण (Ridicule) और दूसरा प्रशंसा मूलक अनुकरण (Applause) कविवर बिहारी के वाग्वय अनुवादकर्ताओं के भावों व आशय (Sense) का अनुकरण [(अतएव, वास्तविक रूप में स्वयं कविवर बिहारीलाल के भावों का भी ; क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि Things which are equal to the same are equal to one another) एक साधारण (Common) वस्तु से बराबरी का सम्बंध रखनेवाली सब वस्तुएँ आपस में भी बराबर होती हैं)] बिहारी के प्रति श्रद्धा के भाव से प्रेरित होकर उनका विशुद्ध यशप्रख्यापित के हेतु किया गया है। इसी प्रकार बिहारी के टीकाकारों का तथा आधुनिक समय के अन्य रसाभ्यासी टीकाकारों का अनुकरण, साधारणतः कुत्सित टीकाकारों के प्रति अविश्वास और उपहास का भाव रखते हुए किया गया है। ऐसा करके ग्रन्थकर्ता ने प्रयोग रूप में अनुकरण काव्य की रचना के उपहास-मूलक और प्रशंसामूलक, रोचक, आलोचनात्मक दोनों आदर्श दिखला देने की चेष्टा की है।

रतिरानी और रस विवेचन

अब प्रश्न यह होता है कि रतिरानी के, अन्तर्गत अनुकरण के द्वारा हास्यरस का सांगोपांग उत्पादित होना सिद्ध होता है अथवा नहीं? जिसके प्रमाण ये हैं—

हास्यरस इस पुस्तक का स्थायिभाव है। "[illegible]के चित्त

चेष्टा को उद्दीपन* कहते हैं। ("चेष्टा" के इस अर्थ के लिये देखो दृष्टांत यथा—मनु १-५२" यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्" आँखों का सङ्कोच, वदन अथवा मुख मण्डल पर हँसी के विकास इत्यादि विकारों (Expressions) को अनुभाव† कहते हैं। और निद्रा आलस्य, अवहित्था‡ इत्यादि व्यापार व्यभिचारी¶ भाव हैं।

अब यदि प्रयोगात्मक (Practical application) सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो "विकृताकारवाग्वेशचेष्टादे कुहकात्" इस वाक्य में हमारे पूर्व निर्दिष्ट अनुकरण काव्य (Parody) के तीनों भेद ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। यथा—भाव के 'वेश' अर्थात् शब्द—उसके विकार जन्य सादृश्यानुकरण (कुहकात्) को हमने शब्दानुकरण प्रधान हास्य रस गर्भित काव्य (Verbal Parody) कहा है।

भाव के 'आकार' अर्थात् भावार्थ अथवा भावाशय (Sense) उसके विकार जन्य सादृश्यानुकरण को भावानुकरण प्रधान हास्य गर्भित काव्य (Sense Rendering Parody) कहा है।

और भाव के "वाक्" अर्थात् शैली उसके विकार-जन्य सादृश्य

---

* उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये—सा० द० प० ३ श्लो० १६०।

† उद्बुद्धकारणैः स्वैः स्वैः, बहिर्भावं प्रकाशयन्,
लोके यः कार्यरूपः सो अनुभाव काव्यनाट्ययो।

—सा० द० प० ३ श्लो० १६२

‡ भिर्स। आतंरिक भाव के गोपन व्यापार को अवहित्था कहते हैं।

¶ विशेषादाभिमुख्येन, चरन्तो व्यभिचारिणः,
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना स्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदा।

—सा० द० प० ३ श्लो० १६८

हमारी समझ में इसका एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि भोज प्रबंध, शास्त्र द्वारा अनुमत, परन्तु शास्त्र ग्रंथों में नामो ल्लेख के अभाव के कारण अस्पष्टानुमत, हास्यप्रधान अलंकरण काव्य है।

इतिहासकार भोजराज को मालव अर्थात् धार देश का राजा बताते हैं। इनका जीवनकाल भिन्न भिन्न मतों द्वारा १०वीं शताब्दी के अंत में अथवा ११वीं शताब्दी के प्रारंभ में माना गया है। इनकी राजसभा में भोज-प्रबंध में वर्णित, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, बाण, मयूर इत्यादि, प्राय सभी संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के कवि, नाटककार और उपन्यासकारों का समकालीन विद्यमान होना सूचित होता है जो इतिहास की दृष्टि से असंभाव्य बात है। यह बात निश्चित है कि न तो वे सब कवि एकत्र समस्थायी और समकालीन ही थे और न उनकी वे कविताएँ, वे समस्यापूर्तियाँ अथवा कवियों की सरस्वती के आगे काव्य परीक्षावाली वे बातें ही सत्य मानी जा सकती हैं।

वास्तव में बात यह थी कि श्रीबल्लाल कवि भोजराज नामक किसी इतिहास प्रसिद्ध काव्यानुरागी मालवदेश के राजा के दरबार में प्रतिभा-संपन्न कवि थे। राजा की अनुमति से अथवा स्वभाव प्रेरणा से, तथा भोजराज की ख्याति उत्पादन करने के हेतु श्रीबल्लाल कवि ने संस्कृत साहित्य का यह काव्यरत्न बनाया, जो आज तक काव्या लोचना के जगत् में सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। ऐसे तो संस्कृत साहित्य में और भी कई आलोचनात्मक ग्रंथ हैं, परन्तु रोचकता, मनोहारिता और लोकप्रियता की दृष्टि से भोज-प्रबंध ही एक ऐसा ग्रंथ है, जो पंच-तंत्र, हितोपदेश और कथा-सरित्सागर के समान संसार-भर में संस्कृत साहित्य के समुज्ज्वल विराट्-स्वरूप को लघु प्रतिमा के रूप में प्रद र्शित कर सका है। संस्कृत-साहित्य में विशेष गति न रखनेवाले हमारे

बातों भारतीय भाई थोड़ी सी प्रारंभिक संस्कृत शिक्षा के बाद भोज प्रबंध ही को पढ़कर हमारे भारतीय काव्य-जीवन के सिद्धांतों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करते हैं, तथा उनके गुणों के तारतम्य का कुछ भाव ग्रहण करते हैं। और, इसी भोज प्रबंध के विषय में हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि यह संस्कृत कवि प्रस्तावनार्थ हास्य प्रधान, एक अद्वितीय अनुकरण काव्य है। भोज प्रबंध में अनुकरण-काव्य के तीनों प्रकार के रूप यत्र-तत्र शोभनीय अवस्था में मिलते हैं। सहृदय पाठक स्वयं पढ़कर देख लें।

यदि अन्वेषण किया जाय, तो और भी अनुकरण रचनाएँ हमारे बृहत् संस्कृत-साहित्यालय में मिल सकती हैं, परंतु वे केवल इंगित मात्र होंगी और उनसे हमको विशेष प्रयोजन भी नहीं है।

पाठकवर्ग, ऊपर हम कह आए हैं कि अनुकरण करना अथवा भावापहरण करना कोई बड़ा दोष नहीं है—यदि वह ढंग से किया जाय। हम यह भी मानने को तैयार हैं कि स्वयं विहारी भी अनुकरणशील प्रकृतिसिद्ध लोभ का संवरण नहीं कर सकते थे और न उन्होंने किया ही। परंतु, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं और फिर भी कहते हैं, भद्दे अनुकरण और सहज ही में पूरी तरह से चोरी के दोष में पकड़े जा सकनेवाले भावापहरण और अनुकरण के विषय में सब कोई विचारशील पुरुष नाक भौं सिकोड़ेंगे। अब देखिए दो भिन्न भिन्न उदाहरण देकर आपके मननार्थ यही बात पेश की जाती है—

कबीर के निम्न लिखित दो दोहों को ही लीजिए—

(१) कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास ;
नैना ही अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास।

(२) यह तन यह तन एक है, एक प्रान दुइ गात ;
अपने जिय मे जानिए, मेरे हिय की बात।

यथा—

(१)

विहारी—हेरि हिंडोरें गगन तैं परीपरी सी टूटि,
धरी धाइ पिय बीच हीं, करी खरी रस लूटि।

रतिरानी—सावन में झूलो परो, सखि संग तिय झुलराय;
आय बीच प्रकटे पिया, 'भरी' कहत लपटाय।

(२)

विहारी—कुच गिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै, चली डीठि मुँहचाइ;
फिरि न टरी, परियै रही, गिरी चिबुक की गाड़।

रतिरानी—कुच पर्वत छवि छकत ही, परयो पेट के गाढ़,
वामें मो मन फसि रह्यो, सकत न कोऊ काढ़।

(३)

विहारी—खेलन सिखए अलि भलें, चतुर अहेरी मार,
काननचारी नैन मृग, नागर नरनु शिकार।

रतिरानी—कर गहि वान कमान, नैना कानन जात हैं,
कैसे बचि हैं प्रान, मृग वनि मारत मृगन को।

(४)

विहारी—सहज सचिक्कन स्यामरुचि, सुचि सुगध सुकुमार;
गनतु न मनु पथु अपथु लखि, विथुरे सुथरे वार।

रतिरानी—कारे सटकारे चिका, झीन सुकोमल वाल;
रेशम-रसरी-जाल मनु, मन-खग फाँसन हाल।

(५)

विहारी—ज्यों-ज्यों जोवन-जेठ दिन, कुच मिति अति अधिकाति,
त्यों त्यों छिन छिन कटि-छपा, छीन परति नित जाति।

रतिरानी—कच कपोल कह बढ़त लागि, बढ़े नितँव कुच नैन,
कटी छीन भइ जात है, मैनाहिं नाही चैन।

(६)

बिहारी—लाज गहौ बेकाज कत, घेरि रहे घर जाहि ,
गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरसु चाहत नाँहि ।
रतिरानी—हरी हरन में मधुर है, हरे गवन की पीर ;
माखन हार गोरस हरत, हरत मान हरि चीर ।

(७)

बिहारी—बिनती रति बिपरीत की, करी परसि पिय पाइ ;
हँसि अनबोलैं ही दियौ, ऊतरु दियौ बताइ ।
रतिरानी—एक दिना पिय ने कहा, करन केलि विपरीत ;
नतमुख ह्वै विहँसी प्रिया, नयनन में भय प्रीत ।

इस अति विस्तृत भूमिका का उपसंहार करते हुए और सहृदय पाठकों से क्षमा प्रार्थना करते हुए हम आशा करते हैं कि वे हमारे आशय पर और इस विनय पर कि

आपहि को अपराध , न्यायालय में आपके ;
पुरवहु मोरी साध , सबो सच्चो न्याय करि ।

पूर्णरूपेण ध्यान देकर हमारे प्रयास पर खूब दिल खोलकर हँसेंगे । बस उसी हँसी के सतरंगरंजित पुण्य प्रकाश में यदि बिहारीलाल उनके और हमारे विशुद्ध हृदयासनों पर आ विराजें, तब तो उनकी यह कामना और हमारी और सहृदय पाठकों की यह मनोभिलाष पूर्ण हो जाय—

सीस मुकुट कटि काछनी , कर मुरली उर माल ;
यहि बानक मो मन बसौ , सदा बिहारीलाल ।

विषय-सूची

रति-रानी

चतुर चोर

हरी हरन में चतुर हैं, हरैं सबन की पीर।
माखन हरि गोरस हरत, हरत मान हरि चीर।

ब्रजविहारी बड़े बाँके बटमार हैं। चोरी करने में भी वह बड़े चतुर हैं। वह चोरी तो करते हैं एक वस्तु की, परंतु पीछे खिंच आती है एकआध और ही चीज़! वह हरन तो करते हैं माखन का, परंतु गोरस अपने-आप चला आता है। हमें आश्चर्य तो यह है कि माखन-चाखन के पश्चात् उन्हें गोरस की लौ क्यों लगी रहती है? मालूम होता है, यहाँ गोरस का कुछ अर्थ ही और है। कवि के इस श्लेष का अर्थ प्रवीण पाठक स्वय ही समझ लें। यदि गोपाल पहले ही गोपियों के गोरस का हरन कर लेते होंगे, तो उन्हें माखन तो मुफ़्त ही मिल जाता होगा।

अब ज़रा एक और चोरी की चासनी चखिए। जल-विहार करती हुई मानिनी गोपियों के वस्त्र चुराकर ही हमारे हरी उनका मान हर लेते हैं। मान को पानी के प्रवाह के साथ बहाकर वे हमारे विहारीलाल से, वस्त्र वापस लौटा देने की,

रति-रानी

चतुर चोर

हरी हरन में चतुर हैं, हेर सबन की चीर।
माखन हरि गोरस हरत, हरत मान हरि चीर।

ब्रजविहारी बड़े बाँके बटमार हैं। चोरी करने में भी वह बड़े चतुर हैं। वह चोरी तो करते हैं एक वस्तु की, परंतु पीछे खिंच आती है एकाएक और ही चीज़! वह हरन तो करते हैं माखन का, परंतु गोरस अपने-आप चला आता है। हमें आश्चर्य तो यह है कि माखन-चाखन के पश्चात् उन्हें गोरस की लौ क्यों लगी रहती है? मालूम होता है, यहाँ गोरस का कुछ अर्थ ही और है। कवि के इस श्लेष का अर्थ प्रवीण पाठक स्वयं ही समझ लें। यदि गोपाल पहले ही गोपियों के गोरस का हरन कर लेते होंगे, तो उन्हें माखन तो मुफ्त ही मिल जाता होगा।

अब ज़रा एक और चोरी की चासनी चखिए। जल-विहार करती हुई मानिनी गोपियों के वस्त्र चुराकर ही हमारे हरी उनका मान हर लेते हैं। मान को पानी के प्रवाह के साथ बहाकर वे हमारे विहारीलाल से, वस्त्र वापस लौटा देने की,

विनय करने लगती हैं। परतु कृष्ण केवल इसे ही पर्याप्त नहीं समझते। वह उनको अपने पास नग्न बुलाकर उनके मान को पूर्णतया चूर्ण कर देते हैं, जिससे वे आगे सँभलकर चलें। अथवा यों कहिए कि वह राधाजी का मान हरकर उनका चीर भी हरने लग जाते हैं, ऐसे वह 'चतुर चोर' समस्त ससार के दु खों की चोरी करें।

मधुर मुरली

घना घटा, दमक दमक, गये जमुन उस पार ।
राधा-तारन तान करि, दियो मदन सर मार ।

सावन का सुहावना समय है । एक साथ हजारों तोपों की आवाज़ के समान गहरी गर्जना हो रही है । मालूम होता है, इंद्रदेव अपनी भार्या भूमि से चिरकाल के बाद मिलने आए हैं, उन्हीं की खुशी में—उनके स्वागतार्थ—यह आनंदोत्सव मनाया जा रहा है । थोड़ी देर में पानी बरसना ही चाहता है ।

इधर तो यह हाल है, और उधर बेचारी विरहिनियों की वेदना का कुछ वारापार नहीं । उनका तो "बदाबादी जिय लेत हैं, ये बदरा बदराह" । परंतु साँवले के लिये तो संयोग-सुख का पूरा-पूरा सामान जुटा है, सिर्फ़ शर्म ही की शिकायत है । आपने एक तरकीब ढूँढ निकाली । घटा की छटा देखने का नाम लेकर आप यमुना के उस पार गए और मीठे सुर में मुरली बजाने लगे । राधा तारन, तारनतरन कृष्ण ने यह तान अपनी प्रेयसी राधाजी को यमुना के उस पार, अपने पास, बुलाने के लिये की । आपने कोई सांकेतिक स्वर सुनाया होगा ।

संसार को इस आनद से वचित रखकर आप अकेले ही राधाजी के साथ मजा लूटना चाहते थे और इमी लिये 'राधा-तारन' अर्थात् राधाजी को तैराने के लिये तान की! परतु नतीजा कुछ और ही हुआ। तान को सुनकर राधाजी तो लज्जावश यमुना न तैर सकीं, परतु समस्त ससार के प्राणी इस भवसागर को—तैर गए—सहज ही में पार कर गए! धन्य, 'राधा-तारन'! आप तैराना तो चाहते हो किसी और को और तैर जाता है कोई और ही। हे माधव! यह मजा तुम्हारी मधुर मुरली को छोडकर और कहाँ?

इस ससार मे आकर वही तरा है, जिसने राधावल्लभ की मुरली की तान के रहस्य को समझ लिया, जो उसके सुमधुर सगीत को घोलकर पी गया है, और जो निशिदिन बस उसी एक प्रेम-रग में मग्न रहता है। बिहारी ने सत्य कहा है—

तन्त्रीनाद कवित्त-रस, सरस राग रति रग,
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अग।

आनंददायी अच्युत

गोपिन के मन हरन की, पियो अधर मकरंद ;
नव घन सुंदर स्याम वपु, करहि न करत अनंद ।

रसिक-शिरोमणि, साँवले नंदलाल ने तो अपनी लीलाओं द्वारा समस्त भक्त-मंडल को वश में कर रक्खा है। भक्तों ने उनको अपने हृदय में स्थान दिया है, और उनके चरणों से ऐसे लिपट गए हैं कि उनकी दीनता देखकर भक्त-वत्सल भगवान् से उनको छोड़ते नहीं बनता। परंतु, यह न समभिए कि कृष्ण जैसे नीतिज्ञ, सबकी चाल में आकर इसी प्रकार प्रेम-बंदी बन जाते हैं। नहीं-नहीं, यह तो अटल और अनन्य भक्ति ही की शक्ति है कि जिसके वश होकर वे लाचार हो जाते हैं। ऐसी कोटि के भक्तों के तो वे सर्वस्व, जीवन प्राण हो रहते हैं, भक्तों में वे इस प्रकार मिल जाते हैं कि वे भक्त और भक्त वे हो जाते हैं, परन्तु सबको यह अनन्य भक्ति दुर्लभ है। इससे यह न समभ लेना चाहिए कि केवल इसी कोटि के भक्त उनको प्रिय हैं। नहीं, उन्होंने तो "भक्तिमान् मे प्रियो नर" कहकर स्पष्ट कर दिया है कि भक्त किसी कोटि का क्यों न हो, वे उसको अवश्य अपनाते हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि जिनकी भक्ति अनन्यता और प्रबलता

में वढी चढी है, वे तो उन पर दावे के साथ अधिकार रखते हैं। परन्तु भगवान् सबके हैं। कोई उनको रासलीला के रसिक रूप में देखकर आनद पाते हैं, तो कोई उन्हें गोपियों के साथ प्रेम करते देखकर प्रेम करते हैं, कोई उन्हें गोपाल रूप में प्यार करते हैं, तो कोई उन्हें दीन-दुख भजन अर्जुन-सखा रूप में देखना पसद करते हैं। साराश यह है कि इन सबको भगवान् आनददायी हैं।

परतु इन कविजी की ओर तो देखिए, इन्होने अपनी डेढ चावल की खिचडी अलग ही पकाकर कृष्णजी को तृप्त करना चाहा है। ये उन्हे और ही रूप मे प्यार करते हैं। इनका तो कहना है कि जिन छैला कृष्ण ने गोपियो के मन हरन कर लिए थे, और जिन्होने उनके अधरामृत का पान किया था, उन्ही कातिमान्, किशोर और सु दर, श्याम शरीरवाले कृष्णकन्हाई को हम अपना प्रेम अर्पित करते हैं। कविजी का कथन सत्य है। मालुम होता है, कवि अधरामृत के वडे ही शौकीन थे, तभी तो इस रूप मे उनके आगे अपना प्रेम प्रकट किया है। परतु कविजी ने यह गारटी नही दे दी है कि सभी को यह रूप सर्वोत्कृष्ट जँचे। यहाँ तो जितने रसिक हैं, उतनी ही रुचियाँ हैं बिहारी उनको 'कर मुरली उर माल' देखना चाहते हैं, कोई-कोई उनको बहुरंगी रूप में, तो कोई 'तिरछे चरण धरे' रूप में देखना चाहते हैं। धन्य हो गोपाल, आपकी लीला पर सब लट्टू हैं

मुक्त मंदाकिनी

मुकत भरि सिर माँग इमि, सोहत बिच कच पास ।
मनु नीलोज्वल नभ बिचे, सुरसरि गंग प्रकास ।

मोतियों से भरी हुई नायिका की माँग केश-पाश के बीच में इस प्रकार शोभा देती है, मानो नीले और चमकीले आकाश में आकाश गंगा झलक रही हो ।

ये कवि भी गज़ब के लोग होते हैं । ये प्रकृति-देवी के लाड़िले लड़कों में से हैं । इनका कुछ ढंग ही निराला है। इनको सुमन में सुंदरी के दर्शन होते हैं, ओस में मोती नज़र आते हैं, महिला के मुख में मयंक के दर्शन होते हैं, लटों में नागिन नज़र आती है, दाँतों में दाड़िम के दाने दीख पड़ते हैं, कटि में केहरि की कटि दिखलाई पड़ती है, मेंहदी लगे हुए करों में कलईदार काँच दीख पड़ता है, और मोतियों से भरी हुई माँग में मंदाकिनी मिलती है ।

ये कवि प्रकृति माता के सच्चे सुपुत्र हैं, इसलिये इन्हें हर जगह ही प्राकृतिक सौंदर्य दीख पड़ता है । मंदाकिनी के समझ लो, भाग्य खुल गए—वह तो मुक्त हो गई ! कविजी की कृपा से उसे ऐसा स्थान मिल गया है कि जिसे त्यागने

की शायद ही कभी उसकी तबियत फरे, क्योंकि उस नभ का तो चद्र कलकी है, परतु नायिका का मुख निष्कलक चद्र है, जिसकी चाँदनी हमेशा छिटकी रहती है। वेनी-रूपी नागिन रक्षा के लिये नियत हुई है, जो सदा पहरा देती है। मेद-आँधी का भी यहाँ डर नहीं है। अत यह सब प्रकार से यहाँ सुखी है।

नेह-नद

सिंदुर माँग भराइ तिय, उमगि-उमगि इठलात ।

मानहु नागर नेहनद, सागर हू न समात ।

सिंदूर से अपनी माँग भरके यह स्त्री इतनी इठला-इठलाकर क्या चलती है, मानो यह दिखाती है कि पति-प्रेम की नदी का प्रवाह समुद्र में भी न समाकर इधर-उधर बह निकला हो।

माँग में भरा हुआ सिंदूर हो मानो पति प्रेम-प्रवाहिनी का वह भाग है, जो हृदय-सागर में भी न समाकर बह चला हो। जो पति-प्रेम में पगी हुई हैं अथवा उससे परिचित हैं, वे इस बात की ताईद करेंगी कि वास्तव में यह प्रेम-रूपी नदी समुद्र में नहीं समा सकती—समुद्र में ही क्या तीनों लोकों में भी नहीं समा सकती। फिर बेचारी नायिका इठला-इठलाकर चले, तो क्या आश्चर्य है! नेह-नद में बहुत-से तो बह तक जाते हैं। नेह-नद की भला क्या हद!

मकड़ी और मक्खी

कामिनि केस कलाप सिर, मकड़ी को सो जाल,
मन माछी तँह फसि रही, कढ़त न होत विहाल।

मकड़ी का जाल तो आपने देखा ही होगा, कैसा सुंदर होता है। कारीगरी को देखकर तो दिमाग चक्कर खाने लगता है। फिर कभी सूर्य की किरणें पड गईं, तब तो ऐसा चमकने लगता है कि देखनेवालों की आँखों में चकाचौंधी आ जाती है। जरा दृष्टि स्थिर कर एक-एक सूत पर नजर डालिए और सोचिए कि उनके बुननेवाले को ईश्वर ने क्या हथौटी दी होगी? स्पर्धाशील जुलाहों की लाखों पीढी गुजर गई, परंतु इसकी नकल न हो सकी। आपने सब कुछ देख लिया। अब साथ ही यह जानने को भी उत्सुक होंगे कि इस जाल का उद्देश्य भी कैसा महान् और अद्वितीय है। परंतु, यहाँ आकर, आपको हताश होना पड़ेगा। देखिए, एक कोने में दुबकी हुई वह बेडौल मकडी ही इस सौंदर्य और कारीगरी के नमूने की स्वामिनी है और, इस जाल के बिछाने का उद्देश्य यह है कि इधर से गुजरनेवाली भोली-भाली मक्खियाँ धोखा देकर फँसाई जायँ देखा, कितना बडा पहाड़ खोदने पर एक छोटा मूसा निकला

"बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का।
जो चीरा तो एक कतरए खूँ न निकला।"

आप भी ध्यान रखिए, किसी भड़कीली चीज़ को देखकर उसके मोह में मन पड़ जाइए।

और सुनिए। कविजी की प्रतिभा ने भी इस प्रकार की एक कपटमय वस्तु स्त्री के छवि-संसार में ढूँढ़ निकाली है। स्त्रियों के केशपाश मकड़ी के जाल के सदृश ही चमकीले और भड़कीले होते हैं, उन पर पड़ी हुई सूर्य की किरणों की चमक भी आँखों की सहन शक्ति से बाहर है, उनका भी उद्देश्य किसी प्रकार भला नहीं है। विधि ने इस केशपाश को ऐसा सुंदर और नयनानंददायी बनाया है कि जिसने एक बार मन भरकर इसकी छवि को देख लिया, वह फँस गया, और उसका निकलना मुश्किल हो गया। वहाँ तो मकड़ी के जाल में केवल मक्खी-जैसे क्षुद्र जंतु ही फँसते हैं, और अगर बड़ा जीव आ पड़े, तो जाल के टूटने की नौबत आती है, परंतु यहाँ तो ऐसा बड़ा भारी जीव फँसता है, जिसकी सामर्थ्य का धौंसा दूर-दूर तक बजता है, चंचलता में, जो हवा से भी बढ़कर है, बलवान् जो इतना है कि विपत्ति पड़ने पर पहाड़ की तरह अचल रह सकता है, दृढ़प्रतिज्ञ इतना कि एक बार प्रतिज्ञा करने पर करोड़ों बाधाएँ क्यों न आ पड़ें, हिलता तक नहीं, जो सूक्ष्म

इतना है कि ध्यान में भी नहीं आ सकता। परंतु, यह सब होते से क्या हुआ, यहाँ आकर उसकी दाल नहीं गलती। जाल में पड़ते ही देवता कूच कर जाते हैं। एक बार इसमें फँस गया, फिर क्या है? जन्म-भर यहीं चक्कर लगाता रहता है, बेहाल होता है, परतु करे क्या? असहाय है। निकल नहीं सकता। गजब का मामला है, प्रभु बचावें तो रक्षा हो।

रेशम-रसरी

कारे सटकारे [illegible], [illegible] चिकने बाल ;
रेसम रसरी जान मनु, मनखग फाँसन जाल ।

यह दोहा सौंदर्य और नजाकत का नमूना है। कविजी कहते हैं कि नायिका के सिर पर काले, लंबे, चिकने और महीन बालों का यह केशपाश प्रेमियों के मनरूपी पक्षी को फँसाने के लिये रेशम की पतली, कोमल और चिकनी रस्सियों से बना हुआ जाल-सा है।

आप जानते ही हैं कि बहुतेरे चिड़ीमार पक्षियों को फाँसने के लिये जाल फैलाकर बैठते हैं। परंतु उनका तो यह व्यापार साधारण है, इसमें कोई विशेषता नहीं है, जो उल्लेखनीय हो। हाँ, कविजी की सृष्टि में एक नया आविष्कार हुआ है, उन्होंने बड़े परिश्रम के बाद यह मालूम किया है कि स्त्री-रूपी एक बहेलिया अजीब ढंग का जाल बिछाकर उसमें मन-रूपी पक्षियों को फँसाता है। वह कोई ऐसा-वैसा बधिक तो है नहीं, जो आपको उसके जाल का पता लग जाय, उसके जाल की रचना ही विचित्र है। उसके काले-काले, लंबे, घुँघराले, चिकने, कोमल और झीने केशों का पाश बिछे हुए जाल के

सदृश है। यह जाल कोमलता, चिकनाहट और भीनेपन से ऐसा प्रतीत होता है, मानो रेशम की बारीक रस्सियों से बना हुआ है। क्यो न प्रतीत हो, यह जाल भी किसी ऐसे वैसे पक्षी के लिये नही है। इसमे तो मन-खग फँसाया जायगा, जो इतना नाजुक है कि थोडी सी क्षति से नष्ट हो सकता है। इस जाल की तारीफ यह है कि अगर और और जालों के स्वामियों को अपने-अपने जाल के इर्द गिर्द छिपकर पक्षियों की ताक में बैठे रहना पडता है, तो यहाँ पर बैठ रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जाल को हमेशा के लिये बिछाकर उसकी स्वामिनी नायिका निश्चित हो जाती है। फिर तो अपने आप यों ही मन आकर इसमें फँस रहते हैं। उन्हे इस फँसने में ही मजा आता है। आप यह कह सकते हैं कि एक बार फँसने पर आप इस जाल से हनुमानजी की तरह सूक्ष्मरूप धरकर निकल बाहर होंगे, परतु क्या आप मन से भी सूक्ष्मरूप धर सकते हैं ?

बेनी-विहार

बर बेनी सिर सोहती, [illegible] ;
मणि रक्षा हित नागिनी, मनहु गहन बन मांह।

कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि नायिका के सिर पर यह बेनी ऐसी प्रतीत होती है, मानों नागिनी ने घने वन के किसी एकांत स्थान में अपनी मस्तक की मणि को धर रक्खा हो और फिर उसके इधर-उधर फिरकर उसकी रक्षा करती हो।

वास्तव में उत्प्रेक्षा अनूठी है। नायिका का घने केशपाश से ढका सिर किसी घने वन से ज्यादा भयोत्पादक है। घने वन में तो कलेजा कड़ा करके कोई घुस भी जा सकता है, परंतु कामिनी के कचपाश की सघनता इस प्रकार की है कि दिमाग़ उसको देखकर ही चक्कर खाने लगता है। और सघन वन भी ऐसा कि जिसमें घोर अंधकार एक ओर से दूसरे छोर तक फैल रहा है—हाथ को हाथ सूझना मुश्किल है। फिर प्रवेश कर इस कानन का सौंदर्य तो निरखा ही कैसे जा सकता है। परंतु दूर से देखने पर एक किनारे पर कोई चमकीली चीज देखकर दिल को धैर्य होता है। उसका प्रकाश इतना उज्ज्वल है कि दूर-दूर तक के स्थान उसके

आलोक से आलोकित हैं। किसी प्रकार गिरते-पड़ते वहाँ पर पहुँचते-पहुँचते यह मालूम होता है कि जिसको और कुछ समझे थे, वह तो एक साँपिन की मणि, किसी पेड के सहारे, इस जगल के एक किनारे, रक्खी है, और उसकी मालकिन, वेनी रूप साँपिन मन-ही-मन उसकी द्युति देखकर हर्षित होती हुई और उसकी रक्षा करती हुई उसके चारों ओर घूमती दिखाई दे रही है। अरे राम ! यह तो बडा भ्रम हुआ, यह तो कुछ और का और ही निकला !

कपोल-कल्पना

[illegible] कपोल निज [illegible] पुनि पुनि [illegible] ;
पुनि पुनि वै [illegible] कथा, [illegible] समान ।

रात को नायक और नायिका के बीच रति-क्रीड़ा तो हो चुकी, परंतु यह न समझिए कि फिर उस केलि-कथा का प्रसंग ही न आया हो। बहुत समय बाद तक इस विषय पर टीका टिप्पणी होती रही। रात्रि में नायिका के सब अंगों को उस प्रेम-रस के आस्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त न था। हाँ, कई-कई अंग अत्यंत सौभाग्यशाली थे, तो पास ही कई ऐसे भी भाग्यहीन थे, जो घटनास्थल पर होने पर भी, इस लीला में शामिल होकर मज़ा चखने से महरूम रक्खे गए थे, वे बेचारे बड़े दुखी थे। उनका दुख तो स्वाभाविक ही था। भला किसी रसिक दर्शनाभिलाषी को नाटक के मंडप में ले जाकर और आँखों पर पट्टी बाँधकर छोड़ दिया जाय, तो क्या वह दुखी न होगा ? यही हाल था बेचारे उन अंगों का। उस समय तो उनको बड़ा क्रोध आया, परंतु करते क्या ? निस्सहाय थे। और उनको निराश करनेवाले भी तो उनके स्वामी—नायक-नायिका ही थे। आखिर किसके आगे दुखड़ा रोते ? उमड़ते हुए

आँसुओं को पी गए। परंतु दृश्य को जानने के लिये रह रह कर दिल में आनेवाली उत्सुकता को मन से न मिटा सके।

पाठक! आप यह जानने के लिये उत्सुक होंगे कि इस बड़ी आफ़त में पड़े हुए ये अग कौन-कौन थे। यह थी नायिका के केश पाश से लटकी हुई और उसके कपोलों के सहारे, तनछीन मन मलीन, पड़ी हुई दो लटें। बेचारी इन्हीं दुखियाओं पर आफ़त पड़ी थी। पर "मरता क्या न करता"—इन्होंने भी एक तरकीब ढूँढ निकाली, ये कपोलों की शरण में गईं, जो इनके पड़ोस में ही रहते थे। कपोल बड़े सहृदय थे, इनकी इस दशा पर उनको दया आ गई। फिर शरणागत की रक्षा करना परमधर्म समझकर इनका दुःख दूर करना उन्होंने अपना कर्तव्य माना। लटों की इच्छा पूरी की गई—प्यारे दंपति की क्रीडा किस प्रकार रही, उसमें कपोलों ने क्या पार्ट खेला इत्यादि सब हाल बताया गया। ये सब बातें कानाफूँसी में कपोलों ने लटों को सुनाईं। लटों का दुःख दूर हो गया। वे तो श्रवणानदरस में मग्न हो गईं, और बार-बार मारे खुशी के लगीं उछलने। भला उनके छोटे-से हृदय में यह आनद-स्रोत कैसे समाता? सो तो अगर वे यह दृश्य आँखों देख लेतीं, तो न-जाने क्या करतीं!

भौंरों की भीर

[illegible] जाति ह्वै, नहिं भौंरन की भीर ;

[illegible], [illegible] कोर ।

नायक-नायिका ने अपने मकान में बड़ों के मौजूद होने के कारण, मिलने का मौका न पाकर, एक तरकीब ढूढ़ निकाली। नायक ने नैन-सैन करके अपनी प्रिया को सांकेतिक स्थान बता दिया और स्वयं उस तरफ़ चल पड़ा। मालूम होता है यह स्थान कालिंदी कूल का कोई कदंबकुंज ही था, जहाँ चिरकाल तक इस कामिनी और कांत ने केलि कर के अकथनीय आनंद लूटा होगा। नायिका तुरंत ताड़ गई, और नायक के चले जाने के कुछ समय बाद कुछ बहाना बनाकर उधर रवाना हुई। परंतु बेचारी का रूप सौंदर्य ही वैरी बन गया। लुटेरों ने अचानक आक्रमण किया। उसके शरीर से निकलती हुई सुवास ने इन डाकुओं को सेंध बता दी। भौंरों को पद्म-पराग का पता मिला, वे भनकार करते हुए चारों ओर से आ जुटे और नायिका पर मँडराने लगे। उधर सर से लटकती हुई लंबी-लंबी लटों को नागिनियाँ समझकर उनके स्वभाव-शत्रु मयूर उन्हें मारने दौड़े। अधरों को पके हुए बिंबाफल जानकर कीर लालच को न रोक सके—उनके

सुधांशु-रूप ललाट में न रहकर अधर में ही अटकी हुई है। कविजी ने इस शका का यों समाधान किया है—अमृत का आधार तो ललित ललनाओं का ललाट ही है, परतु जैसे सुधाकर अपनी शीतल किरणों को फैलाकर सोम इत्यादि जडी-बूटियों को अमृत प्रदान करता है, उसी प्रकार यह ललाट भी अधर को अमृत प्रदान करता है। परतु इसे क्या पडी, जो विना माँगे ही अधर को दान देने दौडता है ? यह तो इस अनोखे अमृत की ही करामात है कि स्वय ललाट से द्रवित होकर अधर में आ ठहरता है, जिससे कि प्यारे की प्यास विना कुछ प्रयास के ही बुझ जाय। या रति समय पति को प्रेयसी के ललाट तक पहुँचने का कहीं परिश्रम न करना पडे, यह सोचकर प्रेमदेव ने अपने पुण्य-प्रकाश के प्रभाव से अमृत को आकर्षित कर के अधर में ला रक्खा है।

कमल की केसर

रतिमगन भरी दिन, तिय मुख मों मन भाय ।
लाल कमल विकस्यो मनहु, धाम पराग सुहाय ।

यह एक नायक के मनरूपी कैमरे में खींचा हुआ, रति समय का प्रिया के मुख पद्म का भाव-चित्र है। लीजिए, इस पर ग़ौर कीजिए और इसके मननानंद में मग्न हो सुख-सागर में गोते लगाइए। दिन का समय है। प्रेम-रूपी पौदे के विकास के लिये चमत्कार-सा अवसर है। इधर नायक और नायिका ने प्रेमोन्मत्त हो रति-क्रीड़ा आरंभ की है, तो उधर उसी समय सरिता-सलिलरूपी सुखद शय्या पर सोती हुई सरोजिनी के साथ सूर्य ने भी क्रीड़ा शुरू की है। अपने-अपने प्रियतम की गोद में खेलती हुई नायिका और पद्मिनी पूर्ण आनंदोल्लास को पा रही हैं। सूर्य-करों के सुखदायी स्पर्श का अनुभव कर कमलिनी ने पूर्ण विकाश पाया है, और नायिका ने नायक के स्पर्श-सुख-जन्य आनंद से एक अनोखी आभा धारण की है। नायिका का चेहरा लालवर्ण हो गया है, तो उधर कमलिनी ने अपनी गर्भस्थ लाली की छटा छिटका दी है। इसी अवसर पर कमलिनी ने संकोच को छोड़ अपने अंदर की पीत-पराग की

सुदरता इस प्रकार दरसा दी, जिस प्रकार नायिका के सुर्ख चेहरे ने केसर की पीत बेंदी। जिनको देख-देखकर नायक महोदय और सूर्यदेव के मन-मृग छलाँगें मारने लगे। भला इस प्रकार की दर्शनीय दृश्यावली कविजो के मन में क्यों न चुभेगी, इसकी तो स्मृति ही रसिकों के मन को मुग्ध कर देती है।

शत्रुओं की सज़ा

भ्रू कमान सर दृग जित, मीन बरौनी जाल ;
कमलनि लगि भौंरा भँव, किए नयनि बेहाल ।

चारों ओर शत्रुओं की फौज घिर आई । उत्तर में खंजन पक्षियों के झुंड-के-झुंड अपनी चपलता और कटीलेपन को फिर से छीनने के लिये झपटे, पश्चिम से मृगों के समुदाय पवन-वेग से अपने तीखे सींगों को झुकाकर अपने नेत्रविस्तार को वापस लौटाने को लपके, पूर्व से कमलों की क़तार अपने दिल को कड़ा करके, अपनी कोमलता, रंग, स्निग्धता, सौंदर्य इत्यादि सर्वस्व का अपहरण करनेवाले पर आक्रमण करने के लिये पैर न होने पर भी उठ दौड़ी, दक्षिण दिशा से, समुद्र को कभी न छोड़नेवाली मछलियों ने भी अपने आकार और चंचलता की चोरी करनेवाले को दंड देने का इरादा करके अपने वासस्थान को छोड़ा, और चारों ने मिलकर चारों ओर से धावा बोल दिया । परंतु इधर नेत्र भी पहले से ही होशियार थे । उन्होंने जर्मनी की तरह पहले से ही लड़ाई के लिये तैयारी करनी शुरू कर दी थी । अत ये इस अचानक आक्रमण से तनिक भी भयभीत न हुए, और अपने सिपहसालारों को शत्रुओं

का सामना करने के लिये भेजा। कमाण्डरइनचीफ (Commander-in chief) भयावने, बाँके वीर भ्रू ने अपनी कमान को तानकर उत्तर और पश्चिम की ओर भयानक बाण-वर्षा करनी प्रारंभ की। हजारों की संख्या में मृग और खजन धराशायी होने लगे। बहुत-से तो डर के मारे ही मर मिटे और जो बाकी बचे, वे दुम दबाकर भागे। वीर बरौनी ने अपना जाल फैलाकर दक्षिण से आती हुई मछलियों का मुकाबला किया, और सबको फंदे में फँसा लिया। अब बाक़ी बचे कर्महीन कमल, सो उनका बचा-खुचा खज़ाना भी प्रवीण पुतलियों ने भ्रमरों का भेष बनाकर लूट लिया, और उनको डरा-धमकाकर यों ही धत्ता बता दिया। तीनों वीरों ने अपना-अपना काम कर दिखाया, और अपने सर्वगुण-सपन्न स्वामी से सम्मान पाया। शत्रुओं को सची सजा मिली।

रूप-नगर के राजद्वार

पुतरी प्रहरी, पलक पट, बरुनि बर्छी धार ;
रूपनगर के नैन हैं, मानहु मायाद्वार ।

पाठक ! आपने अनेक नगर और दुर्ग देखे होंगे, उनके दरवाज़ों पर पहरा देते हुए पहरेदारों, बड़े-बड़े लोहे के फाटकों और उन पर लगे हुए लोहे के तीखे भालों को भी अवश्य देखा होगा । परंतु क्या कभी आपने ऐसे आश्चर्यजनक और भ्रमोत्पादक द्वार भी देखे ? इस रूप-नगर के द्वारों का हम क्या वर्णन करें ! यदि आप रूप-नगर के राजद्वार देख लें, तो आपका नगर के अंदर के ऊँचे, रमणीय और दर्शनीय प्रासादों को देखने का मन ही न करे, ऐसे सर्वांग सुंदर हैं ये नैन-द्वार !

संसार-भर के साइंटिस्ट (Scientists) तथा बड़े-बड़े कारीगर थक हारे, परंतु ऐसा द्वार न बना सके । कवि इनका वर्णन तक न कर सके और चित्रकारों से इनका चित्र तक न उतरा । इन दरवाज़ों का आकार ही निराला है । दोनों पुतली रूपी पहरेदार दिन-भर दरवाज़ों के एक कोने से दूसरे कोने तक टहल-टहलकर पहरा देते रहते हैं । कोई ग़ैर आदमी इनकी नज़र से बचकर नहीं जा

सकता । इनकी कभी बदली नहीं होती । बेचार पुराने विश्वास पात्र नौकर हैं, जादू के पुतले ही समझो । ये कुछ बोलते नहीं, केवल अपने भिन्न-भिन्न भावों को ही झलकाते हैं । इनमें दया, करुणा और अनुराग का भाव देखते हैं, तो रूपनगर के दर्शनाभिलाषियों की हिम्मत बँध जाती है, और वे निधड़क अपने मन को इन पहरेदारों के सुपुर्द कर देते हैं । परन्तु याद रखिए, यह द्वार किसी के मन को रूप-नगर की छवि दिखाकर वापिस नहीं लौटाते, उसको फिर हमेशा के लिये वहीं रहना पड़ता है । यदि इनमें क्रोध इत्यादि का भाव देखते हैं, तो किसी की इनके पास तक फटकने की हिम्मत नहीं होती । ये दिन भर पहरा देते हैं, और-और पहरेदारों की तरह रात को न जग-कर आराम करते हैं । कभी कोई ऐसा दर्शक आ जाय, जो कि इनका परम मित्र हो, तब भले ही ये जगकर अपने मित्र को वार्तालाप का आनंद-प्रदान करें, वरना बिना कोई कारण के कभी नहीं जगते । इन्हें जगने की आवश्यकता ही क्या है । जब ये बरौनी रूपी वल्लम लगे हुए पलकरूपी कपाटों को अच्छी तरह से बंद कर सोते हैं, और इतने होशियार और चंचल हैं कि किसी के नगर की चहारदीवारी को बुरी आँखों से घूरते ही सजग हो जाते हैं, और इनके चेतन होते ही माया-द्वार खुल पड़ते हैं । उनको हाथ से छूने तक की ज़रूरत नहीं है, फिर

चोर नहीं बच सकता। उसको ये अपने माया-जाल में फँसा ही लेते हैं।

अब दरवाज़े के कपाटों का हाल सुनिए, ये पल-पल में खुलते और बंद होते रहते हैं, ये पहरेदारों की आज्ञा का पालन करने में कुछ उठा नहीं रखते। उनके सोने पर बंद हो जाते हैं, और जगने पर खुल पड़ते हैं। और यदि ये किसी अपने प्रेमी को देखना चाहते हैं, तो अनिमेष होकर खुले रहते हैं। इनमें से होकर एक रज का कण तक प्रवेश नहीं कर सकता, नहीं तो रूप-नगर कभी का कुरूप न हो गया होता?

इतने कोमल होने पर भी ये कभी-कभी वज्र का काम कर जाते हैं। ये बरौनी-भालरूपी भालों से सुरक्षित हैं, जो अत्यंत तीखे और दूर ही से हृदय को बेधनेवाले हैं। ये भाले मित्रों ही के हृदय में घुसकर घाव पैदा करते हैं, और मित्र ही इस द्वार में क़ैद किए जाते हैं, दूसरे नहीं। शत्रु तो इनमें खटकते हैं, इसलिये बाहर फेंक दिए जाते हैं। बरौनी के भालों से घायल होने और इस बंदीगृह में सज़ा पाने ही में मज़ा है। अपने मित्रों के विरह में कभी-कभी इनमें से जल-धार बहकर उनके दुर्गों को दूर कर देती है, और कभी-कभी दूना कर देती है। इस जल-धार में शत्रु और मित्र, दोनों बह जाते हैं। यह धारा भी कभी हर्ष की, कभी क्रोध की, कभी दया की,

कभी करुणा की, कभी वेदना की और कभी प्रेम की होती है और भिन्न-भिन्न असर रखती है। प्रत्येक द्वार में ससार के सब सुदर सुदर चित्र टँगे हैं। फिर इनमें तीन 'श्वेत श्याम, रतनार' घडे हैं। जो—

अमी, हलाहल, मद भरे, श्वेत श्याम रतनार,
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।

कपटी काम

नैन पुतरिया मैं मदन, है चमकत या ओट ;
दीठि धार बाँकि तनक हनत प्रान करि चोट।

नायिका के नेत्रों में जिनको आप पुतलियाँ समझे हुए हैं, वे पुतलियाँ नहीं हैं। ये तो आँखों में मदन महाराज विराज रहे हैं। आप पलकों की ओट से दृष्टिरूपी बाणों से निशाना ताक-कर ऐसी चोट करते हैं कि प्राण हर लेते हैं।

मालूम होता है कि शिवजी से डरकर मदन महाराज ने नायिका के नेत्रों को अपना निवास-स्थान बनाया है। खूब एक कोने में आश्रय लिया है। यहाँ वे सुरक्षित रहेंगे, इसमें कोई शक नहीं, क्योंकि जब ये डरकर स्त्री की शरण में आ गए, तब भोले शिव इन्हें क्या कह सकते हैं। परंतु हज़रत अपनी आदत से बाज़ नहीं आते हैं। फिर वही बाण और कमान, फिर वही घोड़े और वही मैदान। क्यों नहीं, शिवजी का तो अब डर रहा नहीं, फिर वे कब चुप बैठ सकते हैं। पहले सरे मैदान शिकार किया करते थे, अब तो आँखों की ओट से आखेट करते हैं।

इन आँखों के इतनी मनोहर मालूम होने का रहस्य अब प्रकट हुआ है। इनमें तो प्रत्यक्ष कामदेव विराज रहे हैं, फिर

भला क्यों न ये इतनी सुदर प्रतीत हों। नायिका के नेत्रों के सामने से गुजरते ही एक चोट लगती थी, मगर इधर-उधर देखते हैं, तो कोई नही दिखलाई पडता था। इस शिकारी का हमें अब पता लगा है। पहले हम नहीं जानते थे कि यह इन गुरुजी की कारगुजारी है।

मगर एक बात है, मदन महाराज ! मृग का वेश बताकर मनुष्यों के मनरूपी मृगों को मारने से आपको मृगया की कोई महत्ता नहीं मालूम होती।

मायावी की माया

मायावी नैना चपल, थिर, चंचल अरु दीन।
बनत कमल खंजन खग, मृग, चकोर, अरु मीन।

ये नेत्र बड़े मायावी हैं—ये पूरे जादूगर हैं। देखते नहीं हो कि ये किस प्रकार मौक़े-मौक़े पर भिन्न-भिन्न भेष बनाते रहते हैं—कभी ये इतने चंचल बन जाते हैं कि चपलता स्वयं इनके सामने चपती है, कभी ये बहुत विस्फारित हो जाते हैं, तो कभी दीन-हीन बनकर बैठ जाते हैं—मानो सचमुच ही ये "नैना बड़े गरीब हैं, रहत पलक की ओट"—कभी सरोज का-सा सुंदर स्वरूप बना लेते हैं, तो कभी खजन के समान चंचल बन जाते हैं, कभी मृग की-सी भोली-भाली दृष्टि बना लेते हैं, तो कभी चकोर की नाई टकटकी लगाकर देखने लगते हैं, कभी-कभी मीन की-सी चपलता इख़्तियार कर लेते हैं, तो कभी-कभी इस तरह स्थिर हो जाते हैं कि स्वयं स्थिरता भी सकुचाती है!

देखी इन नेत्रों की करामात! इन्होंने तो कामरूप देश की कामिनियों को भी किश्त दे दी। पोलीटिक्स में भी ये पूरे प्रवीण प्रतीत होते हैं। जब जैसा मौक़ा देखते हैं, तब वैसा ही रंग-ढंग, वैसा ही हाव-भाव, वैसी ही सूरत-शकल

तरह ही अपने कार्य की सिद्धि करते हैं। जब नायिका को कोई चिंता होती है, तब उसके नेत्र अनिमेष हो कमल-पुष्प की पखुडियों की तरह खुले-के-खुले रह जाते हैं, अथवा सोच में रात्रि के कमलों के सदृश सकुचा जाते हैं। जब नायिका को कामोद्दीपन होता है, तो नेत्रों में काम छा जाता है, और वे मीन के समान मुखरूपी सरोवर में तैरने लगते हैं। जब नायिका के हृदय में भय उत्पन्न होता है, तो नेत्र खजन के समान चचल हो जाते हैं। जब नायिका को प्यारे की प्रतीक्षा होती है, तो प्रेम-दृष्टि से नेत्र टकटकी लगाकर नायक के आने के मार्ग को देखने लगते हैं। जब दीनता दिखलानी होती है, तो मृग बनकर दया की भीख माँगते हैं। ये बडे बाँके तीर-दाज भी हैं। जब इस नेत्ररूपी कमान से मुख्तलिफ किस्म के तीखे-तीखे तीर चलते हैं, तो बडे-बडे योद्धाओं को युद्ध-क्षेत्र से पीठ दिखलाकर भागना पडता है। कभी ये नेत्र काम दृष्टि से काम तमाम कर डालते हैं, तो कभी सोच-दृष्टि से शिकार खेलने लगते हैं। कभी ये भय-दृष्टि से भगा देते हैं, तो कभी प्रेम-दृष्टि से पाश मे बाँधकर कारागृह में डाल देते हैं।

इन नेत्रों की सुदरता का वर्णन कहाँ तक किया जाय, बस इसी बात से आप इनके सौंदर्य का अनुमान कर लीजिएगा

कि कमल इन नेत्रों की कमनीयता को देखकर सदा जल में खड़ा हुआ सूर्य को जलांजलि देता रहता है। इस कठोर तप से सूर्य को प्रसन्न करके सरोज नेत्रों के सदृश सुंदरता की प्राप्ति का वर मांगना चाहता है। इन नेत्रों की-सी नायाब छवि पाने के लिये ही कुरंग कानन का सेवन करते हैं। इसी तरह मीन भी जल में घोर तप कर रही है। इसी हेतु से चकोर चंद्रमा की चाकरी कर रहा है, और खंजन भी इसी चिंता के भंजन की फ़िक्र में कहाँ फिर रहा है।



प्रेम-पीडा

मीन कमल जल में रहें, पै नैनन में नीर,
वाहू करते पीर ये, हमहू करते पीर।

मछली और कमलों का जो आधार है, वही नैनों का आधेय है। मीन और कमल जल विना जीवित नहीं रह सकते, किंतु नैन नीर के आश्रय-दाता हैं। अब पाठक स्वय सोच लें, इनमें से कौन से महत्ता में बढे-चढे हैं। मीन और कमल तो गुलामों के भी गुलाम हैं, नैनों का गुलाम नीर उनका मालिक है। फिर भला वे नेत्रों की समता कैसे पा सकते हैं। यह कवियों की कही हुई झूठी कपोल-कल्पित कथाएँ हैं, जिनके आधार पर हम नेत्रों को ही उलटा कमल और मीन की उपमा दे बैठते हैं। अब आप ही कहिए, हम ऐसे कवियों को किस वस्तु से उपमा दें? नेत्रों को इतना ऐश्वर्यशाली देखकर कमल और मछलियों के मन में पीडा होती है। यह कवियों ही की करतूत है कि उन्होंने उनको, आँखों के सदृश कहकर, झूठा बढ़ावा दे दिया है, जिससे वे अपने आश्रय-दाता के आश्रय-दाता तक की ईर्ष्या करने दौडती हैं।

पाठक! हमारा क्या बिगड़ता है—दुःख होगा, तो उनको

होगा। परंतु यह हमारा कर्तव्य है कि इन पदों की होड़ा-होड़, गोड़ फोड़कर, व्यर्थ कष्ट उठानेवालों को हम सचेत कर दें। हमारे चित्त को भी ये नेत्र अपने सौंदर्य के प्रभाव से पीड़ित करते हैं, परंतु यह प्रेम-पीड़ा है। जिनको यह पीड़ा होती है, और जिनको नहीं होती, उन दोनों को ही भाग्यशाली समझना चाहिए, जिन्होंने इस पीड़ा का अनुभव नहीं किया, वे तो आनंद में हैं ही, परंतु जिन्होंने इसका मजा चखा है, वे भी इसी में परमानंद का अनुभव करते हैं, और परमेश्वर से इस पीड़ा को बढ़ाने की ही प्रार्थना करते हैं।

चपलता की चाह

चचलता भावत हमें, कारण चचल नैन ,
जैसे को तैसा रुचै, कबहूँ अन्य रुचै न ।

चचलता को हम चाहते हैं। चचलता की चटकीली चव सबके चित्त को चुरा लेती है । जहाँ देखते हैं, चंचलता क. चमत्कार नजर पडता है । सर्वत्र उसके गीत गाए जा रहे हैं। कवियों के काव्य में भी इसी की कथा मिलती है। एक साहब फरमाते हैं—"सौ घूँघट की ओट करो, पर चचल नैन छिपैं न छिपाए ।" तो दूसरे शायर, जिन्हें चचलता की चाट पड गई है, कहते हैं—"कुछ भी मजा नही जो यार चुलबुला न हो ।" यह सब कुछ माना । किंतु किसी ने यह भी कभी ख़याल किया कि चचलता को सब इतना क्यों चाहते हैं ?

ये नेत्र सदैव नाचते ही रहते हैं। रात में, निद्रा में भी ये चुप नहीं रहते । स्वप्न-ससार में दौड़ लगाया करते हैं—शांति से बैठना तो ये सीखे ही नहीं । इनकी चचलता के कारण बड़ों-बड़ों की नाक में दम है । अब यह नियम है कि जो जैसा होता है, उसको वैसा ही रुचता है। अत नेत्रों को चचल वस्तुओं से बडी प्रीति है, क्योंकि वे खुद स्वभाव से चंचल हैं । पाठक

आप समझ गए होंगे कि चंचलता के चमके का क्या भेद है। चपलता के कारण ही हमें मृग छलांगें मारता हुआ अच्छा लगता है। इसीलिये मीन जल में तैरती हुई सुन्दर लगती है। इसी चंचलता के कारण चमकने तारे आँखों को अच्छे लगते हैं। चंचलता के ही कारण हमें बालक भाते हैं। चंचलता के ही कारण हम चिड़ियों को चाहते हैं। चंचलता के प्रभाव का कहाँ तक वर्णन करें, इसने 'च' अक्षर तक को ऐसा अपना लिया है कि चंचलता के पर्यायवाची शब्दों में जहाँ देखते हैं, पहलेपहल 'च' चमचमा रहा है, यथा—चपलता में 'च', तो चपलता में 'च', तो चुलबुलापन में 'च'—'च' की अच्छी चल रही है।

प्रेम का प्रभाव

पिय पै जादू कीन, कानन पहले सेइ कै ;
पान प्रेमरस लीन, खिचि आए पिय बैल बनि ।

नायिका के नेत्रों ने पहले कानन का सेवन किया। वहाँ एकांत में वास करके उन्होंने उच्चाटन, वशीकरणादि मंत्रों का साधन किया, जिससे उनमें जादू की-सी अथवा चुंबक की-सी आकर्षण शक्ति आ गई। उन्होंने पहलेपहल इस ताकत को अपनी प्यारी सखी नायिका के प्रिय पति नायक पर ही आजमाया। उन्होंने प्रेम-रसरूपी पान नायकजी को खिलाया, और आप उसको लेते ही बैल बनकर खिंच आए।

पाठक ! आपने कामरूप देश की आश्चर्यजनक कथा-कहानियाँ सुनी होंगी। वहाँ की कामिनियाँ जादू-टोना करने में बड़ी मशहूर हैं। वे जिस सुंदर पुरुष पर आसक्त हो जाती हैं, उसे पान खिलाकर तोता, बैल या मेंढा बना लेती हैं। उनको नित्य अपने पास रखती हैं और जब इच्छा होती है, तब उन्हें पुन: पुरुष बनाकर प्रेम-केलि करती हैं। उनके जादू के जाल में फँसकर बेचारे मनुष्य फिर कभी बाहर नहीं निकल सकते। आजन्म जानवर ही बने रहते हैं। यही हाल हमारे

नायकजी का हुआ है। यहाँ तक बड़ी, सुंदर-सुंदर आँखों ने, उन पर अपना प्रेम प्रकट करके, उनको बैल जैसा सीधा-सादा और भोला-भाला पशु बना लिया, और वे उनकी इच्छा और आज्ञा के अनुसार ही सब काम करने लगे। आप कहेंगे कि उन्होंने अपने प्रेमी को बैल बनाकर बड़ा बुरा काम किया, परंतु क्या आप नहीं जानते कि बैल धर्म का अवतार है, उससे संसार को बड़ा फ़ायदा पहुँचता है। उस पर शिवजी की बड़ी कृपा है।

परन्तु हाँ! एक बात का डर अवश्य है—जो कहीं यह शारदूल सभ्यों के हाथ लग गया, तो बेचारे की बड़ी दुर्दशा होगी। देखते नहीं, आज इन धर्म-वीरों की इस धर्म-भूमि भारत में लाखों की संख्या में हत्याएँ होती हैं और हम चूँ तक नहीं कर सकते। जिनकी माता गायों के दूध, दधि और घृत से हमारा वीर्य बनता है, और उससे हमारी संतान उत्पन्न होकर फिर वही अमोल अमृत समान रस पीकर पलती हैं, उन्हीं हमारी प्यारी माताओं और प्यारे भाइयों की हत्या हम अपने ही देश में होती देखते हैं, और डर या लालच-वश गुलामों की तरह सहे जाते हैं। भला यह हत्या हमारे माथे नहीं, तो और किसके माथे है? हिंदूधर्मावलंबियों को चाहिए कि वे अपने और अपने पूर्वजों के नाम को सार्थक कर दिखावें। अब भी सम

प्रेम का प्रभाव

पिय पै जादू कीन, कानन पहले सेइ के;
पान प्रेमरस लीन, खिचि आए पिय बैल बनि।

नायिका के नेत्रों ने पहले कानन का सेवन किया। वहाँ एकात मे वास करके उन्होने उच्चाटन, वशीकरणादि मत्रों का साधन किया, जिससे उनमें जादू की-सी अथवा चु बक की-सी आकर्षण शक्ति आ गई। उन्होंने पहलेपहल इस ताकत को अपनी प्यारी सखी नायिका के प्रिय पति नायक पर ही आजमाया। उन्होंने प्रेम-रसरूपी पान नायकजी को खिलाया, और आप उसको लेते ही बैल बनकर खिंच आए।

पाठक ! आपने कामरूप देश की आश्चर्यजनक कथा-कहानियाँ सुनी होंगी। वहाँ की कामिनियाँ जादू-टोना करने में बडी मशहूर हैं। वे जिस सु दर पुरुप पर आसक्त हो जाती हैं, उसे पान खिलाकर तोता, बैल या मेंढा बना लेती हैं। उनको नित्य अपने पास रखती हैं और जब इच्छा होती है, तब उन्हें पुन पुरुप बनाकर प्रेम-केलि करती हैं। उनके जादू के जाल में फँसकर बेचारे मनुष्य फिर कभी बाहर नहीं निकल सकते। आजन्म जानवर ही बने रहते हैं। यही हाल हमारे

नाथजी का हुआ है। कहाँ तक कहें, सुंदर-सुंदर औरों ने, उन पर अपना प्रेम प्रकट करके, उनको बैल-जैसा सीधा-सादा और भोला भाला पशु बना लिया, और वे उनकी इच्छा और आज्ञा के अनुसार ही सब काम करने लगे। आप कहेंगे कि उन्होंने अपने प्रेमी को बैल बनाकर बड़ा बुरा काम किया, परंतु क्या आप नहीं जानते कि बैल धर्म का अवतार है, उससे संसार को बड़ा लाभ पहुँचता है। उस पर शिवजी की बड़ी कृपा है।

परंतु हाँ! एक बात का डर अवश्य है—जो कहीं वह पाश्चात्य सभ्यों के हाथ लग गया, तो बेचारे की बड़ी दुर्दशा होगी। देखते नहीं, आज इन धर्म-वीरों की इस धर्म-भूमि भारत में लाखों की संख्या में हत्याएँ होती हैं और हम चूँ तक नहीं कर सकते। जिनकी माता गायों के दूध, दधि और घृत से हमारा वीर्य बनता है, और उससे हमारी संतान उत्पन्न होकर फिर वही अमोल अमृत समान रस पीकर पलती है, उन्हीं हमारी प्यारी माताओं और प्यारे भाइयों की हत्या हम अपने ही देश में होती देखते हैं, और डर या लालच-वश गुलामों की तरह सहे जाते हैं। भला यह हत्या हमारे माथे नहीं, तो और किसके माथे है? हिंदूधर्मावलंबियों को चाहिए कि वे अपने और अपने पूर्वजों के नाम को सार्थक कर दिखावें। अब भी समय

है। क्या हत्यारों का सामना करने की इनकी हिम्मत नहीं?—अवश्य है।

हे हमारे प्यारे गोपाल! तू गोवर्धन गिरि पर गाएँ चराने, बंसी पर गीत गा-गाकर गोपियों की गगरियाँ फोड़ने और गोरस ग्रहण करने और इस तुम्हारे सर्वप्रिय गोधन को घातकों के हाथ से बचाने कब आवेगा? जल्द आ! अब तो यह सितम हमसे सहा नहीं जाता!

चित्र से चित्र

आँखि सुखमा निज रूप की, नैन झँपत हर बार ;
चित्र खैंचि लिए मैं न कहूँ, निर्दई गुणन उतार ।

नेत्र जो बार-बार झँपते रहते हैं, इसका कारण यह है कि वे अपने सौंदर्य को देखकर डरते हैं कि कहीं कोई इस सुंदर 'सीनरी', इस नायाब नज़ारे को देखकर तुरंत अपने दिल के हैंडकैमरे में इसका फ़ोटो न ले ले। मगर मालूम होता है, इन बेचारे भोले-भाले नेत्रों को यह पता नहीं है कि ये चित्रकार भी बड़े ग़ज़ब के लोग होते हैं। ये अपनी चातुरी से ख़ुद आँखें नहीं, आँखों के अक्स को पानी में देखकर उसी वक़्त तस्वीर ले लेते हैं। मुग़ल-सम्राट् अकबर के राज्य-काल में, उसी के दरबार में के चित्रकारों में से, एक ने इसी प्रकार एक चित्र तैयार करके बादशाह सलामत की भेंट किया था।

यह दिल ऐसा-वैसा कैमरा नहीं है कि जिससे कोई बचकर निकल सकता है। आँखों का हा क्या, इसमें तो यार लोग सारे यार का ही ख़ाका खींच लेते हैं। और फिर उसको ख़ानए दिल में लगा देते हैं और तबियत में जोश आते ही

एक नजर उधर फेंक देते हैं—"दिल के आईने में है तस्वीरे यार, जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।" इसी दिल के आईने की दुहाई देते हुए कोई कहता है—

"बेमुरव्वत बेरुखी से शीशए दिल को न तोड़,
यह वही आईना है, जिसमें तेरी तस्वीर है।"

अतः नेत्रों को चाहिए कि अपने नायाब नमकीनपन पर अब इतना नाज करना छोड़ दें। इन बेचारों को शायद यह मालूम नहीं है कि एक-दो नहीं, हजारों की तादाद में इनके फोटो की कॉपियाँ तैयार होकर अब बाजार में बिक रही हैं। एक बात और है, आपने नायिकाओं को देखा होगा कि अपने सलोने मुख को दीठ से बचाने के लिये उस पर दे लेती हैं ईठ—मगर नतीजा क्या होता है—"दूनी ह्वै लागन लगी दिए दिठौना दीठ।" यही हाल इन आँखों का है। ये तो बार-बार इसलिये झँपती हैं कि जिससे कोई इनकी तस्वीर न ले ले, मगर बार-बार झँपने के कारण ये और ज्यादा खूबसूरत मालूम होने लगती हैं। नतीजा यह होता है कि लोगों की तस्वीर लेने की ख्वाहिश और दुगुनी हो जाती है।

प्रेम-पाश

दृग जल मंदिर मीन द्वै, पलक प्रकटि छुपि जात ;
युवक साहि फंदा गहत, ताही में फँसि जात ।

एक सुन्दर सरोवर पर किसी का प्रमोद-प्रासाद—आराम-भवन है। अटारी पर बैठी हुई नायिका पानी में झाँक रही है। उसके नेत्रों का प्रतिबिंब, पलक खुलने और झँपने की क्रिया के कारण, कभी जल में दिखाई देता है और कभी अदृश्य हो जाता है। नीचे की रौंस में जवानी दीवानी के बहकाए हुए नायक महाशय विराजमान हैं। आपकी नज़र जलाशय में पड़ते ही आपने देखा कि दो सुन्दर मछलियाँ पल-पल में प्रकट होकर जल में गायब हो जाती हैं। बेचारे को ऐसी मछलियों का कभी दर्शन तक नहीं हुआ था, इसलिये मन में पाप समा गया। आप तुरंत जाकर जाल ले आए, जाल पानी में डालकर उन चंचल मछलियों को फँसाने का प्रयत्न करने लगे।

नायिका या तो इनको और ज़्यादा बेवक़ूफ़ बनाने के इरादे से वहाँ से नहीं हटी, और यदि उसे यह मालूम न हुआ होगा कि ये मेरी आँखों के प्रतिबिंब को ही मछली समझकर पकड़ना चाहते हैं, तो शायद वह उनके शिकार करने के चातुर्य को

ही देखने के लिये वहाँ डटी रही। युवक महाशय अपनी
मे ही मग्न थे। दिन-भर बीत गया पर मछली हाथ न आई।
आपकी समझ में कुछ नहीं आया। सोचने लगे, बड़ी
अजीब मछलियाँ हैं—सामने दिखाई देती हैं, पर जाल में
नहीं फँसती। इसी तरह उन मछलियों के जाल मे आप
फँसे रहे।

अंत में हारकर आपने ऊपर की ओर दृष्टि फेंकी—आपके
झेंप की कमी न रही। उसको नायिका के नेत्रों का प्रतिबिंब
समझते ही आप नायिका के नयनरूपी मीन के जाल में ही
जा फँसे—प्रेम-पाश में उलझ गए। देखा आपने! सुलझाने
को जाकर खुद ही उलझ गए। इतनी मेहनत का यह फल
मिला।

काम की कसौटी

कोटि एक विधि जगत में, सिरजे वस्तु सुखकंद ;
सुंदरता के आँकिबे, रची कसौटी नैन ।

विधि ने संसार में करोड़ों सुखदायक वस्तुओं की सृष्टि करके उनके सौंदर्य को जाँचने के लिये नयनरूपी कसौटी बनाई है। सचमुच बड़ी बढ़िया कसौटी है। जिस सौंदर्य को चाहो इस पर कसकर देख लो, उसी वक्त यह बतला देगी कि खरा है या खोटा। एक उर्दू के शायर ने इन नयनों को काँटा बनाया है। सुनिए—

सीरत तो एक ओहदे मुंसिफ़िया बशर का है ;
तुलता है जिसमें हुस्न वह काँटा नज़र का है ।

यह नज़र का काँटा हुस्न तौलता है, किंतु कसौटी के मुक़ाबले में यह काँटा नहीं ठहर सकता। काँटे में बाँटों का झगड़ा रहता है। अगर बाँटों के रखने में थोड़ी भी ग़लती हो जाय, तो तौल कुछ-का-कुछ हो जाय। अगर किसी को बाँटों की पहचान न हो, तो कुछ-का-कुछ समझ ले। इसके अतिरिक्त यदि काँटे में थोड़ी-सी भी कान हो, तो बड़ी भारी ग़लतफ़हमी हो जाने का डर है। कसौटी में इस क़िस्म की कोई दिक़्क़त पेश

नहीं आ सकती। बस, वस्तु को लिया और उस पर और उसी वक्त असलियत को पहुँच गए। इस कसौटी के विषय में अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि विधि ने दया करके हम सबको यह कसौटी दी है। कसौटी देकर विधि ने यह बड़ा बुद्धिमानी का काम किया, वरना उसकी सृष्टि में रूप और कुरूप दोनों एक भाव बिकते। बड़ा भारी अन्याय होता। जहाँ इस वक्त हुस्न के बाजार में आप चहल-पहल देखते हैं, वहाँ आप एकदम सन्नाटा पाते और सौंदर्योपासना का किसी को स्वप्न भी नहीं आता।

चतुर चकोर

चमक रहे तारे नहीं, ये नभ में चहुँ ओर,
पीतम को हैं खोजते, विरहिनि नयन चकोर।

ये जो नभ में चमक रहे हैं, ये तारे नहीं हैं, किंतु विरहिनी स्त्रियों के नेत्र चकोर बनकर अपनी नायिकाओं के पतियों को ढूँढ़ रहे हैं।

अब तो आँखें अच्छी उड़ान होने लगी हैं। कहाँ पहुँची हैं, आसमान पर ! अब पति कहाँ छिप सकते हैं ? अब तो आँखें ऊपर से दूरबीन की तरह पृथ्वीतल का कोना-कोना देख लेंगी। पति होंगे तो पृथ्वी पर ही, फिर बचकर कहाँ जा सकते हैं। आँखों की इस हालत को देखते हुए तो अगर पतिजी महाराज पृथ्वी को छोड़कर सातवें आसमान पर पहुँच जायँ, तो वहाँ से भी ढूँढ़कर ये उनको निकाल लाएँगी।

आवश्यकता से ही नए-नए आविष्कार उत्पन्न होते हैं। यदि यह आवश्यकता न होती, तो बेचारी नायिकाएँ क्यों अपनी प्यारी आँखों को तारे बनाकर, इतनी ऊँची उड़ाकर, रात के समय अपने पतियों को उनसे ढुँढवातीं।

हम इन तारों की सुंदरता को देखकर बड़े प्रसन्न हुआ

नहीं आ सकती। बस, वस्तु को लिया और उस ... और उसी वक्त असलियत को पहुँच गए। इस कसौटी ... विषय में अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विधि ने दया करके हम सबको यह कसौटी दी है ... कसौटी देकर विधि ने यह बडा बुद्धिमानी का काम किया ... वरना उसकी सृष्टि में रूप और कुरूप दोनों एक भा... बिकते। बडा भारी अन्याय होता। जहाँ इस वक्त हु... के बाजार में आप चहल-पहल देखते हैं, वहाँ आप एक... सन्नाटा पाते और सौंदर्योपासना का किसी को स्वप्न भी न आता।

मोतिनी मछलियाँ

[illegible]

[illegible]

हम देखते हैं कि कुछ लोग नदी के जल में जाल लगाकर मछलियाँ पकड़ते हैं। इन बेचारों को अपने इस धंधे में बड़ा दुःख होता होगा। पहले तो जाल बनाना, इसी को बहुत समय और परिश्रम चाहिए, फिर उसको ले जाकर नदी के किसी ऐसे स्थान पर, जहाँ खूब मछलियाँ हों, छोड़ना। तदुपरांत धैर्य रखकर परमेश्वर के आसरे घंटों तक बैठे रहना। जब इतनी मुसीबत उठाई, तो कहीं दो-चार मछलियाँ हाथ लगीं। फिर इस पर भी मुसीबत यह कि इन मछलियों का हाथ आना अनिश्चित है, कभी दो-चार हाथ लग गईं, तो कभी एक भी नहीं, क्योंकि पकड़नेवाले कोई ईश्वर के घर से ठेका तो ले ही नहीं लेते कि निश्चित संख्या में मछलियाँ मिल जायँ। कभी-कभी यह भी होता है कि चतुर मछलियाँ जाल के फाँस में आती ही नहीं और कई-कई आकर भी निकल जाती हैं। मतलब यह है कि बेचारे धीवर को मछलियाँ बड़ी तकलीफ से नसीब होती हैं।

करते थे। किंतु इनकी सुंदरता का रहस्य तो हमें अब मालूम हुआ है। ये तो नायिकाओं के सुंदर नेत्र हैं। भला फिर क्यों न सुंदर दिखलाई दें। अफसोस! हम चंद्र नहीं हुए, वरना खूब रात-भर ऊपर से ही इन आँखों के सौंदर्य का निरीक्षण किया करते। सौंदर्योपासक तो दो सुंदर नेत्रों को ही देखकर मुग्ध हो जाते हैं, फिर भला जहाँ इतनी बड़ी तादाद में खूबसूरत आँखें देखने को मिल जायँ, तब तो कहना ही क्या है! हमारी आँखें सदा रात को ताराओं पर जाकर पड़ती हैं, इसका कारण अब मालूम हुआ है। हमारे नेत्र अपने सहजातियों को देखकर प्रसन्न होते हैं और प्रेमवश बार-बार उधर ही देखते हैं।

की बात तो दूर रही, वहाँ तो दाँथ के साथ सब कार्य होते हैं, ईश्वर का इस मामले में दखल नहीं है। इन दो मछलियों को तो सब संसार को फँसाने में कोई प्रयास नहीं होता। उलटा आनन्द होता है। इस पर भी तुर्रा यह कि यत्न का फल निश्चित होता है। निश्चित संख्या से ज्यादा भले ही फँस जायँ, पर कम की संभावना नहीं।

धन्य, कविजी महाराज, आपने तो यह खोजकर संसार का बड़ा उपकार किया है। आजकल का जगत् कृतघ्न नहीं, नहीं तो निश्चय ही आपको कोई-न-कोई ऊँचा और सम्मानित पद मिलता। आपका यह संदेश हम सबको सुनाकर कह देते हैं कि भाई, सावधान रहना, वरना बचाव होना मुश्किल है।

परतु जरा गौर कीजिए। कविजी ने कडी खोज के बाद पता लगाया है कि तिय-छविरूपी सरिता में, जिसमें प्रेम-जल अगाध परिमाण में भरा है, चक्षुरूपी दो ऐसी चतुर मछलियाँ रहती हैं, जिनकी कार्यवाही देखकर अक्ल दग हो जाती है। कहाँ तो कुछ धीवरो का यह काम था कि मछलियाँ पकडते, परतु यहाँ तो उलटी माया हो गई। प्रेम-सलिलपूर्ण नद में रहनेवाली इन दो ही मछलियो ने समस्त ससार के मनुष्यों को फँसा लिया। और, फँसाया भी किस अजीब ढग से! क्या कोई जाल फैलाया, क्या कोई अच्छी जगह ढूँढी, जहाँ शिकार प्रचुर परिमाण में हो, क्या इनको भी घटों ईश्वर के आसरे बैठे रहना पडा, क्या इन्होंने भी अपने कार्य में परिश्रम किया और मुसीबतें उठाईं, और क्या इनके प्रयत्न का भी परिणाम अनिश्चित रहा? नहीं-नहीं, ऐसा समझना तो भारी भूल होगी। जाल की जरूरत नहीं—इनको बिना जाल समस्त जगत् को इस खूबी से फँसाना आता है कि फँसे हुओं का निकलना मुश्किल हो जाता है। अच्छा स्थान कौन ढूँढे, यहाँ तो अपने आप ही खिंचे हुए सब लोग शिकार-रूप में आ उपस्थित होते हैं, उनको शिकारी के चंगुल में फँसने में ही आनंद होता है। घटों बैठकर बाट जोहना तो दूर रहा, एक पल-भर में ही यहाँ तो लाखों मन फँस जाते हैं। ईश्वर के आसरे

की मात तो दूर रही, यहाँ तो दाने के साथ सब कार्य होते हैं, ईश्वर का इस मानने में दखल नहीं है। इन दो मछलियों को तो सब संसार को फँसाने में कोई प्रयास नहीं होता। उलटा आनंद होता है। इस पर भी तुर्रा यह कि यत्र का फल निश्चित होता है। निश्चित संख्या से ज्यादा भले ही फँस जायँ, पर कम की सम्भावना नहीं।

धन्य, कविजी महाराज, आपने तो यह खोजकर संसार का बड़ा उपकार किया है। आजकल का जगत् कृतघ्न नहीं, नहीं तो निश्चय ही आपको कोई-न-कोई ऊँचा और सम्मानित पद मिलता। आपका यह संदेश हम सबको सुनाकर कह देते हैं कि भाई, सावधान रहना, वरना बचाव होना मुश्किल है।

बड़ा व्यापारी

तिया रूप बाजार में, सबै बिकत बिन दाम ,

नैन होहिं जिच बटखरे, बड़ व्यापारी काम ।

सत्य है, भला रूप-बाजार में खरीदने जाकर कौन नहीं बिका ? फिर जहाँ कामदेव-जैसे व्यापारी हैं, जो यदि खरीददार कुछ न खरीदें, तो धनुष-बाण लेकर उन्हे मारने तक को तैयार बैठे हैं, और यदि बिकनेवाले बिकना न चाहें, तो उनका भी यही हाल होता है। परतु इसमे बेचारे काम-व्यापारी का क्या कसूर है। वह तो इस रूप-बाजार का सबसे बडा व्यापारी है, और बिना दाम लिए-दिए ही खरीद व फरोख्त करता है। इसमे गलती है तो खरीदने और बिकनेवालों की। यहाँ तो लोग बिन दाम ही ग्राहकों के हाथ बिक जाते हैं और उलटे उन्हीं को कुछ पेशगी देते हैं।

और सुन लीजिए, तौलने के लिये बाँट कैसे अच्छे और टकसाली हैं। इनसे तौला जाकर कोई कम या ज्यादा नहीं उतर सकता। पूरी-पूरी तौल जोखा होती है, तब कहीं सौदा होता है। परतु सौदा पसद आने पर तो ग्राहकजी स्वय सौदा हो ते हैं, और रूप के सौदागर के हाथ उलटा कुछ गाँठ का देकर

बिक जाते हैं। कभी-कभी तो व्यापारी के चाँटों को देखकर ही खरीददार लट्टू हो जाते हैं और सब कुछ भूल जाते हैं। फिर तो कहीं इनके चाँटोंसे ये चाँट मिल गए, तो आनंद की सीमा नहीं रहती, जिन्हें ये चाँट, खुद बखुद, बात-की-बात में बोलकर बता देते हैं।

यह सट्टा युग है—इसमें सबको सट्टा लगता है—कभी खरीददारों की मरम्मत बनती है, तो कभी बेचने बिकनेवालों की हजामत! यहाँ तक पता नहीं रहता कि किस वक्त कौन बिक जाय, और कौन खरीद ले। व्यापारी लोग इस क़िस्म के व्यापार से बचकर ही चलें।

सम्मान के साधन

इन नयनन के रूप को, कहँ लों करों बखान;
इनते कविता कामिनी, पावत हैं सम्मान।

"इन नयनों के रूप का कहाँ तक वर्णन करूँ। कविता और कामिनी इन्हीं के कारण आदर पाती हैं।"

सत्य है। इन नयनों के अनुपम रूप का वर्णन कर कठिन है। कारण कि—"गिरा अनयन नयन बिनु बानी।" दरअसल बडी मुसीबत है। कामिनी की शोभा उसके सु नेत्र हैं। यदि ये न हों, तो उसे कोई फूटी आँख से भी न देखे एक नेत्रों के विना उसका सारा रंग-रूप धूल में मिल जा नेत्र स्त्रियों के हथियार हैं। जब किसी के हथियार छिन ग फिर क्या है, फिर उससे कौन डरेगा? डरना तो दूर र बल्कि लोग उसे और जबरदस्ती डरायँगे। नेत्रों के विना नारि के लिये अपने जन्म-सिद्ध स्वत्वों की रक्षा करना भी कठि हो जायगा। विना तीरों के कमान किस काम की। और ती भी ऐसे कि—"चल चित बेधत चुकत नहिं।" ये वे हथियार जो—"वक्त पडे चूकें नहीं, करत लाख में चोट।" फिर भ इनकी क़दर क्यों न होगी। इसकी ताईद वे लोग करेंगे,

सम्मान के साधन

इन नयनन के रूप को, कहँ लों करों बखान,
इनते कविता कामिनी, पावत हैं सम्मान।

"इन नयनों के रूप का कहाँ तक वर्णन करूँ। कविता और कामिनी इन्ही के कारण आदर पाती हैं।"

सत्य है। इन नयनों के अनुपम रूप का वर्णन करना कठिन है। कारण कि—"गिरा अनयन नयन बिनु बानी।" दरअसल बड़ी मुसीबत है। कामिनी की शोभा उसके सुंदर नेत्र हैं। यदि ये न हों, तो उसे कोई फूटी आँख से भी न देखे। एक नेत्रों के बिना उसका सारा रंग-रूप धूल में मिल जाय। नेत्र स्त्रियों के हथियार हैं। जब किसी के हथियार छिन गए, फिर क्या है, फिर उससे कौन डरेगा? डरना तो दूर रहा, बल्कि लोग उसे और जबरदस्ती डरायँगे। नेत्रों के बिना नायिका के लिये अपने जन्म-सिद्ध स्वत्वों की रक्षा करना भी कठिन हो जायगा। बिना तीरों के कमान किस काम की। और तीर भी ऐसे कि—"चल चित बेधत चुकत नहिं।" ये वे हथियार हैं, जो—"रुक पड़े चूकें नहीं, करत लाख में चोट।" फिर भला इनकी कदर क्यों न होगी। इसकी ताईद वे लोग करेंगे, जो

स्वर्ग का सुख

लाज भरे रंगे रंग रंग, स्वर्गानंद की पूर ।
ते निरखत हैं नर, केलि कला में सूर ।

लज्जा से भरे हुए, प्रेम के रंग में रंगे हुए और स्वर्ग का आनन्द जिनमें झलकता हो, ऐसे सुन्दर नेत्रों के दर्शन उन्हीं भाग्यशाली वीर पुरुषों को होते हैं जो केलि-कला में कुशल होते हैं।

यह रति समय की आँखों का वर्णन है। स्त्री में वैसे ही लज्जा होती है, फिर रति के समय का तो कहना ही क्या है। लज्जा का होना स्वाभाविक ही है। प्रेम तो है ही, विना प्रेम के मिलन ही कैसे हो सकता है, नायक रति-रीति में बड़ा प्रवीण है। अत नायिका नायक के साथ स्वर्ग का सुख भोगती है। उसी स्वर्गीय सुख का सुखद फोटो नायिका की आँखों में दीख पड़ता है। एक तो नारी के नेत्र वैसे ही सुन्दर होते हैं, तिस पर उनमें लज्जा भरी हुई है, प्रेम में पगे हुए अलग हैं, और यहीं पर खातमा नहीं हुआ है, बल्कि स्वर्ग के सुख से पूरित हैं। वास्तव में ऐसे अनूठे नेत्रों को देखने का अधिकारी वही पुरुष हो सकता है जिसने केलि-कला युद्ध में अपनी शूरवीरता देकर विजय प्राप्त की है।

शिकारी की शिकायत

कर गहि बान कमान, नैना कानन जात है,
कैसे बाचि है जान, मृग बनि मारत मृगन को।

ये नए नटखट शिकारी नैन, कटाक्षरूपी अतीव तीक्ष्ण बाण और भ्रू-रूपी कमान को लेकर कानरूपी वन को जाते हैं। लीजिए, यह और सुनिए—कानन को जाकर ये शिकारी मृगों को धोखा देकर मोहित करने के लिये खुद ही मृग बन जाते हैं। मृग बेचारे उनके असली रूप को न पहचानकर मंत्र मुग्ध की तरह इन नवागतुकों की ओर टकटकी लगाकर देखने लगते हैं। परंतु फिर भी माया-जाल मे फँसे ही रहते हैं, और शिकारी को शिकार करने का पूरा-पूरा अवकाश देते हैं। वे अचंभे में आकर इधर-उधर देखते हैं, परंतु समझ कुछ काम नहीं करती। इतने में शिकारी इनका काम तमाम करके इनको अपने साथ लेते जाते हैं।

यही हाल हमारे युवकों का होता है। वे मृग-जैसे नायिका के नेत्र देखकर उन पर मोहित हो जाते हैं और कटाक्ष बाणों से बिंधकर भी नहीं टलते। उन्हें घायल होने में ही मजा मिलता है।

स्वर्ग का सुख

लाज भरे [illegible] रस रँग, आनन्द सों पूर ।
ये निरखत [illegible] नयन, केलि कला में सूर ।

लज्जा से भरे हुए, प्रेम के रंग में रँगे हुए और स्वर्ग का आनन्द जिनमें झलकता हो, ऐसे सुन्दर नेत्रों के दर्शन उन्हीं भाग्यशाली वीर पुरुषों को होते हैं जो केलि कला में कुशल होते हैं।

यह रति समय की आँखों का वर्णन है। स्त्री में वैसे ही लज्जा होती है, फिर रति के समय का तो कहना ही क्या है। लज्जा का होना स्वाभाविक ही है। प्रेम तो है ही, बिना प्रेम के मिलन ही कैसे हो सकता है, नायक रति-रीति में बड़ा प्रवीण है। अत नायिका नायक के साथ स्वर्ग का सुख भोगती है। उसी स्वर्गीय सुख का सुखद फ़ोटो नायिका की आँखों में दीख पड़ता है। एक तो नारी के नेत्र वैसे ही सुन्दर होते हैं, तिस पर उनमें लज्जा भरी हुई है, प्रेम में पगे हुए अलग हैं, और यहीं पर खातमा नहीं हुआ है, बल्कि स्वर्ग के सुख से पूरित हैं। वास्तव में ऐसे अनूठे नेत्रों को देखने का अधिकारी वही पुरुष हो सकता है जिसने केलि-कला युद्ध में अपनी शूरवीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की है।

शिकारी की शिकायत

कर गहि बान कमान, नैना कानन जात हैं,
कैसे बचि है जान, मृग बनि मारत मृगन को।

ये नए नटखट शिकारी नैन, कटाक्षरूपी अतीव तीक्ष्ण बाण और भ्रू-रूपी कमान को लेकर कानरूपी वन को जाते हैं। लीजिए, यह और सुनिए—कानन को जाकर ये शिकारी मृगों को धोखा देकर मोहित करने के लिये खुद ही मृग बन जाते हैं। मृग बेचारे उनके असली रूप को न पहचानकर मंत्र मुग्ध की तरह इन नवागतुकों की ओर टकटकी लगाकर देखने लगते हैं। परतु फिर भी माया-जाल में फँसे ही रहते हैं, और शिकारी को शिकार करने का पूरा-पूरा अवकाश देते हैं। वे अचभे मे आकर इधर-उधर देखते हैं, परतु समझ कुछ काम नहीं करती। इतने में शिकारी इनका काम तमाम करके इनको अपने साथ लेते जाते हैं।

यही हाल हमारे युवकों का होता है। वे मृग-जैसे नायिका के नेत्र देखकर उन पर मोहित हो जाते हैं और कटाक्ष बाणों से बिंधकर भी नहीं टलते। उन्हें घायल होने में ही मजा मिलता है।

स्वर्ग का सुख

लाज भरे रस रंग रँग, स्वर्गानंद सों पूर ;
ते निरखत सुंदर नयन, केलि कला में सूर ।

लज्जा से भरे हुए, प्रेम के रंग में रँगे हुए और स्वर्ग का आनंद जिनमें झलकता हो, ऐसे सुंदर नेत्रों के दर्शन उन्हीं भाग्यवाली वीर पुरुषों को होते हैं जो केलि-कला में कुशल होते हैं।

यह रति समय की आँखों का वर्णन है। स्त्री में वैसे ही लज्जा होती है, फिर रति के समय का तो कहना ही क्या है। लज्जा का होना स्वाभाविक ही है। प्रेम तो है ही, बिना प्रेम के मिलन ही कैसे हो सकता है, नायक रति-रीति में बड़ा प्रवीण है। अत नायिका नायक के साथ स्वर्ग का सुख भोगती है। उसी स्वर्गीय सुख का सुखद फोटो नायिका की आँखों में दीख पड़ता है। एक तो नारी के नेत्र वैसे ही सु दर होते हैं, तिस पर उनमें लज्जा भरी हुई है, प्रेम से पगे हुए अलग हैं, और यहीं पर खातमा नहीं हुआ है, बल्कि स्वर्ग के सुख से पूरित हैं। वास्तव में ऐसे अनूठे नेत्रों को देखने का अधिकारी वही पुरुष हो सकता है जिसने केलि-कला युद्ध में अपनी शूरवीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की है।

मुख के मददगार

मुखहिं अपूरा जानि कै, रचे मनहु विधि नैन ,
रूप मधुर रस पान करि, रूप मधुर रस दैन ।

बड़े-बड़े अनुभवी और धुरंधर विद्वान् भी कभी-कभी भूल कर बैठते हैं। फिर यदि नौसिखिए भूल करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। विधाता ने पहलेपहल मनुष्य बनाकर उनको खान पान द्वारा जीवित रखने के लिये मुखेंद्रिय बनाया, परंतु धीरे-धीरे मालूम हुआ कि यह इंद्रिय पूरी तरह पर अपना काम करने—कर्तव्य पालन करने में असमर्थ है। तब उसने मुख के मुख्य अंग जिह्वा को दंड देने के लिये दाँत बनाए। इनसे डरकर जिह्वा ने अपनी भरसक कोशिश की, और नया-नया रसास्वादन करने कराने लगी। सब कुछ किया, परंतु विधाता मुख को रूप-माधुर्य चखने में—सौंदर्य रस पान करने में, समर्थ न बना सका।

तब अंत में हैरान होकर उसने आँखों का आविष्कार किया। आँखों ने रूप-रस पीने का ठेका लेकर बेचारे मुख की मुसीबतों का मुकाबला किया और उन्हें मार भगाया। अपूर्ण मुख की पूर्ति हो गई। उसने आँखों को अपना दाहना अंग समझकर हरएक वस्तु का सार उन्हीं को देना शुरू

कर दिया। नेत्रों के चमकीलेपन और सौंदर्य की सीमा न रही। ये ही मनुष्यों के सब अंगों में सुंदर गिने जाने लगे। ऐसे नेत्रों न होते, उन्होंने तो अंग-प्रत्यंग की पालन और पोषण करनेवाले गुरुराज की मदद की, और उनके कष्टों को काटा। यदि इस पर भी गुरु उन पर विशेष कृपा न रखता और उनका सबसे ज्यादा सम्मान न करता, तो यह उस गुरु की कृतघ्नता गिनी जाती।

गुरु ने इन्हें इतना तत्त्व प्रदान किया और इन्होंने इतना रूप-रस पिया कि इनमें से भी रूप-रस टपकने लगा। इन्होंने जो रस टपकाया, वह मधुरता में अमृत से कुछ कम न था। इससे बहुत-से लोगों की तृप्ति होने लगी। चारों ओर प्रेम-रस का प्रवाह बहने लगा।

हमको इन नैनों का बड़ा कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि इन्होंने परोपकार के लिये ही इस जगत् में जन्म लिया, और स्वार्थ को ताक़ में रखकर जितना रस स्वयं पिया, उससे सहस्रगुना ज्यादा पिलाया। धन्य है, ऐसे निःस्वार्थ परोपकारियों को! अब के उपकारियों का अपकार करनेवाले और मददगारों को मारनेवाले कृतघ्न इनसे सबक़ सीखें।

काम के कमल

कर१ युगल सोहत मनहु, प्रेम प्रलापाधार ,
किधों नाल युत कमल द्वै, कीन्ह द्विगुफित मार।

कामदेव की कारीगरी और कला-कौशल का कथन कहाँ तक करें। उसने कौन-सी ऐसी चीज़ बनाई, जिसे देखकर लोग वाह-वाह न कर उठे हों। एक कमल-नामक कोमल औज़ार लेकर, कमल का मसाला लेकर और कमल ही को नमूने के तौर पर रखकर उस काम-कारीगर ने क्या न कर दिखाया। इसी एकमात्र सामग्री से उसने कर्णकमल, करकमल, मुखकमल, नैनकमल, कुचकमल, पदकमल इत्यादि इत्यादि अनेक अनूठे आविष्कार सबकी आँखों के आगे कर दिखाए।

इस काम-कारीगर के कर की करामातों में से दो कोमल-से-कोमल कमल लेकर कामिनी के कान बनाने की करामात ही को कविजी यहाँ कह रहे हैं। कांता के दोनों कमनीय और कोमल कान इस प्रकार दिखाई देते हैं, मानो वे प्रिय प्राणपति के प्रेम-प्रलाप के संपुट हैं, जिनमें प्रेमप्रलाप-नामक रत्न बड़े यत्न के साथ रक्खा जाता है, और कभी प्रकट नहीं किया जाता। या वे ऐसे मालूम होते हैं, मानो मदन ने दो सुकोमल, सुगंधित, सुंदर

और सनाल मरसिज संकर सहज ही में विगुंफित कर दिए हों।

पाठक! इन कमलों की निरन्तर तो दूसरे कमल तरसते होंगे। देखते नहीं, कभी-कभी नीलोत्पल आकर इनसे वार्तालाप कर जाते हैं; जैसे अपने वंश के उत्तराधिकारी के पास उस वंश के कुल-के लोग आमदनी करने आया करते हैं और अन्यान्य सज्जनों की झूठमूठ चुगली तथा शिकायत किया करते हैं। मालूम होता है, नीले कमल इन्हीं लोगों की श्रेणी में से हैं। ये कर्ण कमलों को सिखा देते होंगे कि दूसरे लाल, पीले और श्वेत कमल तो आपकी समता करना चाहते हैं। कर्ण कमल भी इनकी बात मानकर और धोखे में आकर इन्हीं को नित्य अपने पास रखते हैं। उन्हें चाहिए कि बेचारे दूसरे गरीब कमलों की भी बात सुनें और सत्य-झूठ का निर्णय करके जो चाहें करें। पक्षपातरहित होना ही बड़ों को शोभा देता है।

प्रेम-प्रहरी

बेसर मोती करहु जनि, नाक बाल सुन चेत,
काम पठायो पहरुआ, निशि दिन पहरा देत।

हे नायिका ! तू इस बेसर के मोती को इस तरह अपने नाक का बाल न बना। अभी से सावधान हो जा। इसे इतना सिर मत चढा। भला, यह भी कोई बात हुई कि यह हमेशा तेरे अधरों पर ही लटकता रहता है और तेरे मुख से एक एक शब्द जो निकलता है, उसको नोट करता है। तेरी हर एक हरकत को देखता रहता है। देवियाँ स्वभाव से ही बडी भोली-भाली होती हैं। अत पुरुषों की चिकनी-चुपडी बातों में आ जाती हैं और इस प्रकार अपने हाथों से अपना ही सत्यानाश करती हैं। बावरी ! यह मोती कामदेव का भेजा हुआ पहरेदार है, जो रात-दिन तेरा पहरा देता है और तेरी एक-एक बात को नोट करता रहता है। तू इसको इतना लाड-प्यार करती है, किंतु इसका मौका लगते ही यह तेरी झूठी-झूठी शिकायतें करेगा।

क्या तू नहीं जानती है कि पुलिस में नौकरी करनेवाले मनुष्य अपना कर्तव्य पालन करने में बडे पक्के होते हैं।

पुलिस में नौकरी करनेवाले, औरों का तो जिक्र ही क्या है, खुद अपने आपको गुण्डों में फँसा लिया करते हैं। इनको शान्ति भंग ही पैसा दिया जाता है। इनका विश्वास करना अच्छा नहीं है। इसलिये तू यहाँ से सँभल जा। कदाचित् तुझे यह ख्याल हो कि ये लोग तुझे नारी समझकर छोड़ देंगे, तो तू सख्त गलती करती है। वह जमाना गया कि जब स्त्रियों के साथ रू-रियायत या सलूक किया जाता था। आजकल ताजीरात हिंद और जाब्ता फौजदारी की तूती बोल रही है—आजकल ये ही हमारे धर्मशास्त्र हैं। मनुस्मृति का अब यहाँ मान नहीं है।

विचित्र वैद्य

निठुर भौंर के दस सों, भए गाल पर घाव,
चूमि लेन पीतम सदा, तिनको औषधि भाव।

इन पीतमजी ने योरप (Europe) के डिप्लोमेटों को भी मात कर दिया। बेचारी भोली-भाली देवी को धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करना ये खूब जानते हैं। जरा आपकी गुफ्तगू तो मुलाहिज़ा फरमाइए। आप फरमाते हैं—"ये भौंरे कैसे निठुर हैं। कपोलों पर इन्होंने ऐसी बेरहमी से डंक मारे हैं कि घाव हो गए हैं। रसना में रस (अमृत) रहता है। सो अपने गालों को मेरे सामने करो। मैं इन्हें चूम लेता हूँ। अभी मिनटों में सारा जहर उतर जायगा। यह एक अक्सीर दवा है।"

मालूम होता है कि पीतमजी को उनकी परोपकार-वृत्ति की पोल खोलनेवाला अभी कोई नहीं मिला है, वरना ये सारी हिकमत भूल जाते। दूसरों का इलाज करते-करते कभी कहीं ये खुद मर्ज मोल न ले लें। पीतमजी अच्छी तरह समझ लें कि डिसोमेसी हमेशा काम नहीं देती है। अंत में असफलता अवश्य होती है। और फिर बड़ी दुर्गति होती है। किंतु इस वक्त पीतमजी हमारी नसीहत क्यों मानने लगे हैं। इस समय तो इनकी चालें खूब चल रही हैं।

मुग्ध मधुप

कोमल सरस कपोल पर तिल इमि शोभा पाय ;
जनु गुलाब कण्टकरहित, रसिक मधुप लिपटाय ।

सरस कोमल कपोल पर तिल इस प्रकार शोभा देता है, मानो कंटकविहीन गुलाब में रसिक भ्रमर लिपटा हुआ है।

भौंरे बड़े रसिक होते हैं। रस के लिये काँटों की कोई परवा नहीं करते हैं। उनको उन काँटों में छिदने में ही मज़ा आता है। विदग्ध-हृदय पुरुष इसके साक्षी हैं। भ्रमर ने प्रेम के तत्त्व को समझ लिया है। वह काँटों से तो डरे ही क्या, मृत्यु तक से भय नहीं खाता है। प्रेमी पुरुषों का स्वभाव है कि जान पर खेलकर भी अपने प्रेम का परिचय देने से बाज़ नहीं आते। ये लोग विघ्न-बाधाओं से नहीं घबराते। किंतु भाग्य से, बिना प्रयास किए ही यदि अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति हो जाय, तो और भी अच्छी बात है। हमारा रसिक भौंरा ऐसे ही भाग्यशाली जीवों में से है। इसे बिना काँटोंवाला गुलाब मिल गया है। अच्छी तक़दीर खुली है। अब निश्चिंत होकर सुखनालिंगन करे—दोनों हाथों से जी खोलकर रस लूटे।

उसे चाहिए कि कवि को धन्यवाद दे कि जिनकी बदौलत उसे ऐसा सुख भोगने को मिला है । कवि महाशय ने प्रेमी जीवों के आराम का खास तौर पर खयाल रक्खा है ।

मुक्त मुक्ता

सफल जनम तुम जग भयो, बेसर मोती सेत,
राधा अरु नँदलाल के, अधरन को रस लेत।

हे बेसर के श्वेत मोती ! तेरा ही इस संसार में जन्म लेना सफल हुआ है, जो तू राधा और नँदलाल दोनों के अधरों के रस का पान करता है। जिस अधर-रस के लिये कृष्ण के सदृश योगीश्वर राधिकाजी के चरण-कमलों में सिर नवाते हैं, उनके चरणों की रज अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं और रूठ जाने पर घंटों उनको मनाते हैं, उसकी प्राप्ति बिना प्रयास ही हो जाना बड़े सौभाग्य से ही सम्भव है। तिस पर भी तारीफ यह है कि अकेली राधिकाजी के अधरामृत का पान ही नहीं, हजरत कृष्ण से भी नहीं चूकते हैं। बेचारे कृष्ण को तो यह कोरा ही रख देते हैं। जो कुछ रस कृष्ण पान करते हैं, उसको तो तुरत ही यह उनके अधरों से चूस लेता है। फिर कृष्ण के पास कुछ नहीं रहता। कदाचित् यही कारण है कि कृष्णजी कभी तृप्त नहीं होते हैं। इस बेसर-मोती की वजह से ही उनको राधिकाजी की बार-बार खुशामद करनी पड़ती है। यदि यह बेसर का मोती न होता, तो मनमोहन को इस तरह बार-बार राधिकाजी मान का डर न

दिखातीं। और न कृष्ण महाराज को ही इस तरह अनुनय-विनय करनी पडती। किंतु यह मोती ऐसा रकीब खडा हो गया है कि इसके कारण कृष्णजी की भी नाक में दम है।

इस बेसर के मोती की बिहारी किस तरह बडाई करते हैं, सो सुन लीजिए—

अजौं तरयौना ही रह्यो, श्रुति सेवत इक अंग,
नाक बास बेसर लह्यो, बसि मुकुतन के संग।

इस मोती को अच्छी मौज मिली—वैकुंठ का वास और अधरामृत-पान का आनंद।

प्रेम-पय-पान

[illegible] पय पान को, [illegible] सुखदानि ।
[illegible] बुझानि ।

नायिका की सखी बड़ी चतुर थी। नायिका [illegible] ऊपर आई, तो वह उसके मुख पर के प्रस्वेद का कारण ताड़ गई। अतः वह नायिका से बोली कि पसीना सुखाकर ठंडा जल पी लो, जिससे शांति हो जाय। नायिका समझ गई कि सखी मामले तक पहुँच गई। अतः नायिका प्रौढ़ा तो थी ही, उसने सखी से उस बात को छिपाकर रखना उचित न समझा और हँसकर बोली कि रात पिय के अधरों का रस पान किया था, सो उससे प्यास बुझ गई। शीतल जल की अब आवश्यकता नहीं है। भला, जिसे प्यास बुझाने को अमृत मिले, वह पानी से प्यास क्यों बुझावेगी। पानी से प्यास बुझावें वे जिनके भाग्य में पिय के अधरामृत का पान नहीं लिखा है। नायिका, नायक के स्या, वास्तव में अपने ही अधरों का पान करती है। नायक रस लाया कहाँ से ? नायक ने नायिका से ही तो रस लिया था, सो नायिका ने फिर नायक से छीन लिया। फिर कभी मौक़ा पड़ेगा, तो नायक नायिका से छीन लेगा।

इस बेचारे रस की तो आफत ही समझो। कभी यह इस बर्तन में डाला जाता है, तो कभी उस बर्तन में, लेकिन यह कसूर इन रसराज का ही है। इन्हें सोच-समझकर इन नारियों के चक्कर मे पडना था। इनसे अधिक सबध रखने से किसकी दुर्गति नही होती ?

बहुरंगी बिहारी

लखि बहुरंगा रूप तिय, राधा लहै हँसि दौर ,
दसना पदि श्याम मधु, घन बिहुरगुन बान ।

प्रेम-साम्राज्य के सम्राट् भगवान श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओं को सुनकर आज किस सहृदय की आत्मा नहीं फड़क उठती। विविध प्रकार से प्रेम-क्रीड़ाएँ करके प्रेम-रस का इन महाशय ने जो मजा चखाया था, आज उसको याद कर करके प्रेमियों के हृदय ललक उठते हैं। कभी गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा, तो कभी राधा के साथ वन-विहार, कभी प्रिया के संग झूला झूलना, तो कभी जल विहार। यही नहीं, कभी-कभी तो इनको अद्भुत लीलाएँ रचने की सूझती। कभी-कभी आप रूप बदलकर प्रियाजी के पास जाते और उनको खूब छकाते। परिणाम यह होता कि इन दोनों प्रेमियों का प्रेम अबाध्य रूप से दिन-दिन बढ़ता ही जाता।

इस दोहे में नटवर व्रजविहारी की इसी बहुरंगी लीला का वर्णन है। आपके मन में आई कि वेश बदलकर प्रिया के पास चलें। वेश ऐसा सजाया, चाल-ढाल ऐसी बदली कि किसी प्रकार से पोल न खुल जाय। परंतु क्या आग भी कभी कपड़े

में छिपाए छिप सकती है ? क्या सूर्य भी कहीं बादलों में छिप सकता है ? आखिर पोल खुल ही गई। सब कुछ छिपा लिया, किंतु उन मदभरी, रसीली आँखों और उस घनश्याम तथा आभापूर्ण वर्ण को कैसे छिपाते ?

राधिकाजी ताड़ गईं। हृदय में, प्रेम और विस्मय में झगड़ा छिड़ गया। वह अपने हृदय के इन भावों को न छिपा सकीं। बहुत कोशिश करने पर भी हँसी निकल पड़ी। इसी समय एक दर्शनीय दृश्य उपस्थित हुआ। वह दृश्य केवल अनुभवनीय ही है। उसका वर्णन करना सर्वथा सामर्थ्य की सीमा के बाहर है। हँसने से जो राधाजी का मुखारविंद खिला, तो उसमें से मोती के समान सफ़ेद दाँत चमकने लगे। उनकी आभा की किरणों ने श्रीकृष्ण के घन-सदृश श्याम शरीर पर पड़कर एक अच्छा दृश्य दिखलाया। घन पर रह-रहकर विद्युत् चमकने लगी। अहा ! उस समय क्या ही मज़ा रहा होगा, पाठक अनुभव कर लें।

शुभ्र सीप

हँसत राधिका [illegible], [illegible] [illegible] उजार।
मनहुँ [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] मुहात।

हम यह नहीं बता सकते कि राधाजी कौन-से मौके पर हँसी हैं, क्योंकि उनका हँसमुख मुखड़ा तो नित्य हँसता-सा ही जान पड़ता है। परंतु यहाँ कुछ कुछ ऐसा मालूम होता है कि मोहन उनके मन को मोहने के लिये उन्हें गुदगुदा रहे हैं, और दूसरों को मोहने जाकर उनके खिलखिलाकर हँसने पर खुद ही मोहित हो गए हैं। हम उनको मनमोहन न कहकर मनमोहित कहें, तो अच्छा हो।

लोग कहते हैं कि मन देने से मन मिलता है, परंतु यहाँ तो पहले मन लेकर ही मन दिया है। लोगों को यह मालूम नहीं कि पहले एक प्रेमी मन देता होगा, तभी न दूसरा लेता होगा। यदि दोनों ही पहले से ही अपना-अपना मन दे दें, तो लेनेवाला तीसरा ही चाहिए, नहीं तो वे मन बीच ही में टकराकर चकना-चूर हो जायँगे। प्रेम की हार में जीत होती है, इसके अनुसार राधाजी ने पहले हार की हँसी हँसकर कृष्ण के मन को जीत लिया। बस, एक क़हक़हे में गुणग्राहकजी खुद ही बिनदाम

विक गए। नहीं-नहीं, बिनदाम तो नहीं बिके, उस फटी सीप में अमूल्य चमकदार मोतियों की लडी को देखकर आपको लोभ हो आया, अथवा पके अनार को फटते देखकर आपको उसका अनुपम रस चखने की मन में आई। यह क्या प्रेमनाथ! प्रेम मे भी स्वार्थ और लोभ!

रसना के रस

षट रस रसना आदि दै, देत नवरस बनाय ।
अधर अधारस पान करि, रस ही देत पिलाय ।

कटु, तीक्ष्ण, अम्ल, मधुर, कषाय और लवण ये छ रस चखकर, यह रसना शृंगारादि नवरसों का रसास्वादन करा देती है । उदारता का अनुपम उदाहरण है । छ के बदले नव देना कुछ छोटी-मोटी बात नहीं है । फिर 'षट्रस विधि की सृष्टि में' के अनुसार छ से ज्यादा रस न होने पर भी वह नव-रस प्रदान करती है । भलाई का बदला किसी को चुकाना हो, तो इसी तरह चुकाए । यदि इतना न हो सके, तो कम-से कम अधरों की तरह, जितना रस पान करे, उतना तो पिला ही देना चाहिए । बड़े प्रेम के साथ इस ढंग से पिलाना चाहिए कि पीनेवाले की प्यास न बुझने पर भी तृप्ति हो जाय, और वह यही समझे कि मैं ही नफे में रहा हूँ ।

अब बहुत-से ऐसे भी हैं, जो केवल लेना ही जानते हैं और देने का नाम तक नहीं लेते । नाक ही को ले लीजिए । आप संसार के सुंदर-से-सुंदर और सुगंधित-से-सुगंधित सुमनों की सुवास सूँघकर बदले में कुछ नहीं सुँघाते । पाठक कहेंगे—

"प्रिया के श्वास में सुगंध का आभास तो अवश्य रहता है", परन्तु यह आमोद उनके मुख-कमल से निकलनेवाले शीतल श्वास में ही होता है।

अब कान की जरा और सुन लीजिए। आप खिडकी के एक कोने में जमकर रसना के सुनाए हुए नवरसों को सुन लेते हैं। फिर सुनाने की तो बात ही दूर रही। सुनानेवाले को उत्साह तक नहीं देना जानते। आप बडे कृतघ्न और सूम हैं, इसीलिये तो कवियों ने आपको अपनी कविता में बहुत कम स्थान दिया है। आपका बहुत कम गुणगान किया है।

नया संकेत

[illegible]

[illegible]

धन्य हो माधव ! तुम्हारी महिमा कौन कह सकता है। हे मुरलीधर, तुम कभी तो इतने सुकुमार बन जाते हो कि मुरली तक नहीं सँभाल सकते, और कभी गिरिधारी बनकर पर्वत-का-पर्वत कनिष्ठिका पर धारण कर लेते हो। हे जगन्नाथ, तुम जगत की रक्षा करते-करते, थककर गोपीनाथ बन बैठते हो, कभी पुरुषोत्तम बनकर समस्त संसार को उपदेश देते हो, तो कभी गोपाल बनकर ग्वालों की तरह उनका-सा आचरण करते हो। तुम्हारे जिस मुकुट की एक झलक के लिये देवर्षि तक तरसते हैं, वह ही तुम्हारा मुकुट मानिनी राधाजी के चरणों में यों ही पड़ा लुढ़का करता है। तुम सबसे बड़े दाता और सबसे बड़े याचक हो। तुम सबसे ज्यादा शूरवीर और सबसे बढ़कर कायर हो। गीता का गान गानेवाले तुम्हीं और गोपियों का गोरस हरण करनेवाले भी तुम्हीं हो। तुम्हारा कहाँ तक बखान करें। त्रिभुवन में ऐसी कोई बात नहीं, जो तुममें न हो। तुम प्रकृति के प्रवर्तक जो ठहरे। तुम सबसे बढ़कर समझदार और

सर्वज्ञ तो हो ही, हम जरा तुम्हारे भोलेपन का भी बखान करना चाहते हैं।

गोपियों के गालों को माखन, उनके चिबुकों को आम और उनके ओठों को पके दाख बताकर आप चखना चाहते हैं। वे बेचारी भोली-भाली ललनाएँ तुम्हारे इस रहस्यभरे भोलेपन को क्या जाने? बेचारी सोचती होंगी—"लल्लूजी बड़े भोले हैं और इन बातों से अभी अनभिज्ञ हैं। अपना क्या जाता है? इनका हठ पूरा हो जाने दो", परन्तु वे यह नहीं जानतीं कि इस चाखन में चुबन छिपा है, जो चतुर गोपियों के चचल चित्त को चुबक की तरह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। परन्तु इस नटखट, नटवर नदनदन को 'ना' कहें भी, तो कैसे कहें? यदि कहीं से दाख या आम मिल जायँ तब तो उसे दे भी दें, परन्तु वह तो ऐसे समय में इनको चाखना चाहता है, जब कि इन फलों का समय ही नहीं है। यदि माखन कहीं से लाकर चखाएँ भी, तो हजरत फरमाते होंगे—"नहीं, यह माखन इतना साफ़, चिकना और स्वादिष्ट नहीं है, इसलिये मैं तो तुम्हारे इस पहलेवाले माखन को चखूँगा।" फिर बेचारी व्रज बालाएँ कहाँ तक बहानेबाजियाँ करके बच सकती हैं?

इंदु की ईर्ष्या

प्यारी को मुख देखिकै, करो डाह न चन्द ;
याही सों नित दूबरो, होत बापुरो चन्द ।

हजरत चंद्र तो बुरे फंदे मे फँसे । किसी नायिका विशेष के सुंदर मुख को देखकर डाह के गर्त में मुबतिला हो गए । दर्पण उठाकर बार-बार मुख देखते हैं । नायिका के सौंदर्य के मुकाबले में अपने सौंदर्य को फीका पाकर डाह से जले जा रहे हैं । बुरे चक्कर में पड़ गए हैं । "चिंता भली चिंता बुरी ।" इसी चिंता के कारण बापुरा चंद्र नित दुबला हो रहा है । पाठको ! बन सके तो शीघ्र कोई इलाज करो । रोग जो कहीं असाध्य हो गया, तो हमें भी मुसीबत उठानी पड़ेगी । जो कहीं इसी चिंता में चंद्र इस संसार से चल बसे, तो बस समझ लो, संसार में अँधेरा छा जायगा । चाँदनी रातों के लिये फिर रोते ही रह जाओगे । परमात्मा न करे, जो कहीं इस तरह की नौबत पेश आ जाय, तो हमें भी बोरिया-बिसतरा बाँधकर चंद्र के साथ कूच करने को तैयार रहना चाहिए । भला इनके बिना तो यह सारा संसार शून्य प्रतीत होगा ।

सुनते हैं कि विलायत में बड़े-बड़े चोर रहते हैं । किसी से

मिल-जुलकर कोशिश करिएगा कि विलायत के किसी नामी चोर के जरिए से इन प्यारीजी के रूप को चुरा लिया जाय, और वह चद्र के सुपुर्द किया जाय। बड़ा भारी उपकार होगा। इधर तो चद्रदेव की जान बचेगी, उधर दुनिया के सर से एक बहुत बड़ी बला टल जायगी।

कोप का कारण

राहु न ग्रस मलिन चंद को, विधि सों बैठो कोपि ।
त्रिभुवन परम सोभा, चंद्र न सकहि सह गोरि ।

चंद्र सौंदर्य-जगत् का जीवन प्राण है । यह तो विधि की कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है । अपनी कारीगरी का सबको अभिमान होता है और अपनी बनाई हुई सुंदर कृति सबको प्यारी लगती है । फिर भला चंद्र विधि को प्रिय क्यों न होगा ? उन्होंने तो इसकी रचना में अपनी प्रतिभा का खूब उपयोग किया होगा । तभी तो चीज भी ऐसी सुंदर बनी, जो सुंदर वस्तुओं में सबसे उत्कृष्ट नहीं, तो उनमें से एक अवश्य है । अत अगर इस प्रिय वस्तु पर दुःख पड़े, तो विधि से सहन न हो सकेगा । परंतु विधि तो सृष्टि के आधार, कर्ता-धर्ता ही ठहरे । किसकी मजाल है कि उनकी चीज पर आँख गड़ावे ? तब तो यह स्पष्ट है कि राहु द्वारा चंद्र के ग्रसे जानेवाली किंवदंती निस्सार और बेसिर-पैर की समझी जानी चाहिए । भला राहु ऐसे तुच्छ जीव की क्या मजाल, जो सृष्टि के स्रष्टा विधि की, जिनका लोहा सब मानते हैं, चीज को दुःख देने का दुस्साहस करता । यह तो कल्पना के भी

वाहर है। तव तो काल्पनिकों की ऊटपटाँग कथाओं ने धोखा दिया।

यह तो ठीक है, किंतु हम जो चद्र महोदय को कभी-कभी गायब और कभी-कभी विकृत रूप में देखते हैं, इस शका का समा धान कैसे होगा ? लोजिए, कविजी ने इसी का समाधान कर दिया है, जो मन मे सोलहों आने ठीक जँच जाता है। वह यह है कि चद्र का राहु द्वारा ग्रसा जाना निर्मूल है। यह चद्र तो और-और मनुष्यों की तरह कभी-कभी कोप में आकर अपने स्वामी विधिजी से रूठ जाता है। रूठता है इसलिये कि ससार की सु दरियों की मुख-द्युति अपने से भी वढ़कर देख, इसके मन में ईर्ष्या-भाव पैदा होता है। पाठक ! जरा सोचने पर मालूम होगा कि इस डाह का आतरिक कारण क्या है। कारण यह है कि जहाँ चद्र को पक्ष के अनुसार क्षीणकला होने, और क्रमश घटने-वढने का असाध्य रोग लगा हुआ है, वहाँ सु दरियों के मुखचद्र की आभारूपी कला घटने के वजाय दिन-दिन वढती ही है। वहाँ तो घटने का नाम तक नहीं है। वहाँ तो 'नितप्रति पून्यौं ही रहै।' दूसरे, चद्र में कलक है, पर तियमुखचद्र में कलक का नाम नहीं। यह हीनता भला मानियों में अग्रगण्य चद्र से कव सही जा सकती थी। अव कोप किस पर करें। उसी विधि पर ही न, जिसने कहने को

तो दोनों को पक्षपात रहित होकर बनाया, पर किया वास्तव में सरासर अन्याय कि स्त्री को चंद्र की अपेक्षा यह विशेष गुण दे दिया।

भला मान की बात पर प्राण देनेवाले सुधांशु इस गर्व-गंजन को देख, कैसे चुप रहते? झट जी में सोचा कि विधि को इस लापरवाही का मजा चखाना चाहिए। आपने आजकल के सभ्य-संसार के फ़ाज़िलों की तरह मानहानि के मौक़े पर पदत्याग करना ही उचित समझा, जिससे समस्त संसार सहित विधाताजी को भी यह तो मालूम हो जाय कि चंद्र महोदय भी कोई चीज़ हैं, उनका अपमान उनको कदापि नहीं करना चाहिए। अब भी पश्चात्ताप करके उनको क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए। परन्तु विधिजी क्या करें? उनकी तो जान आफ़त में है। वे क्या जवाब दें? उन्होंने जान-बूझकर तो यह धोखेबाज़ी की ही नहीं थी, जो दोषी ठहरें। सुंदरियों में स्वभावत ही मोहिनी शक्ति होती है, वही शक्ति उन पर भी काम कर गई। उनको यह ज्ञान तक न हुआ कि उन्होंने क्या गजब कर डाला। छवि रचना करते-करते ही पागल की तरह बिना सोचे-विचारे यह विशेष गुण स्त्रियों को दे दिया। यह हुआ चंद्रग्रहण का असली रहस्य।

मयंकों की मानहानि

चारु चमक मुखचद की, देखि स्याम पट ओटि,
ऐसी हिय में बस गई, भात न शशि मुहि कोटि।

नायिका श्याम चीर ओढ़े हुए है। उसकी ओट मे से उसके मुखचद्र की चारु चमक मेरे हिय में ऐसी समा गई है कि एक-दो नही, करोडों चद्रमा भी उसके मुख के मुकाबले मे मुझे अच्छे नही लगते हैं।

करोडों चद्र भी अच्छे न लगे, तो कोई अचरज की बात नहीं है, क्योंकि मुखचद्र की कुछ निराली ही शोभा है, चद्र वास्तव में उसे नही पहुँच सकता। श्याम पट है, वही श्याम घन है। उसकी ओट मे से नायिका का मुख जो दीख पडता है, वही चद्रमा है। किंतु यह मुखचद्र शशि से अधिक शोभाशाली है, क्योंकि यह निष्कलक है। फिर भला इसके सामने कलक-पूर्ण चद्रमा, चाहे करोडों ही क्यों न हों, कैसे ठहर सकते हैं? आप क्या नहीं जानते हैं, "प्यारी को बनाय विधि धोए हाथ, ताको रग जमि भयो च द्र, हाथ झारे भए तारे हैं।" तब बापुरा चद्र इस नायिका के मुख की समता कैसे कर सकता है? क्या ही अच्छा होता, यदि विधि

आकाश में कोई ऐसा ही निष्कलंक चंद्र बना देता, जिससे सबको ऐसा अनुपम सौंदर्य देखने को मिलता।

नभ का नीलम

नीले पट लखि स्याम हिय, राधा मुख इमि सोहि,
निलम झरोखे झाकि मनु, चद जमुन जल जोहि।

इधर राधाजी ने नीली साडी पहनी है। साडी पर जरी के तारे जडे हुए जान पडते हैं। उस साडी पर उनका मुख ताराओं से झिलमिलाते हुए आकाश में चद्रमा की तरह प्रतीत होता है। श्रीकृष्ण का रग नीला है ही, उनका विशाल वक्षःस्थल नीले जल से भरे हुए यमुना के चौडे पाट की तरह जान पडता है। राधाजी प्रेम-पूर्वक उनके श्याम हृदय को देख रही हैं। उधर चाँदनी खिली हुई है। निशा-नायिका ने तारा-जटित नील गगन को ही साडी की तरह पहना है। चद्र ही निशा का मुख है। वह अपने प्रिय यमुना के नील जलरूपी हृदय में झाँक रही है। या यों कहिए कि इधर तो जरी के तारारूपी नगों से जडी हुई साडीरूपी नीलम के झरोखे से राधा का मुखचद्र कृष्ण के हृदय में और उधर तारारूपी नगों से जटित आकाशरूपी नीलम के झरोखे से चद्र यमुना-जल में झाँक रहे हैं। यही मय दृश्य हमारे कवि की कल्पना-चक्षु के सामने घूम रहे होंगे। उसी समय आपने यह अनूठी उत्प्रेक्षा की होगी।

आप कहते हैं—"नीले रंग की साड़ी में से श्याम के हृदय को देखती हुई राधाजी का मुख ऐसा प्रतीत होता है, मानो आकाशरूपी नीलम के झरोखे से झाँककर चन्द्रमा यमुना के जल में प्रतिबिंबित होता हो।" राधाजी का नीला घूँघट ही नीलम का झरोखा माना गया है। ऐसे-ऐसे सुंदर भवनों का ऐसा ही नगजटित नीलम का झरोखा होना चाहिए। देखा कविजी को आपने! नीलम को नभ में चढ़ाकर छोड़ा। पता नहीं कविजी किस चीज के झरोखे से झाँककर कौन-से जल में अपना प्रतिबिंब देखते हैं? हाँ, खयाल आया, आप शायद ज्ञान-रूपी नीलम के झरोखे से झाँककर कल्पनारूपी जल में अपना प्रतिभारूपी प्रतिबिंब देखते होंगे। खैर, हम भी आज से इस प्रकार देखना सीखेंगे।

सुंदर सुमन

धड वेली मुख सुमनवर, ग्रीवा नलिका मात,

कारे कोमल कच मधुप, नाई शोभा पात।

नायिका का धड तो सु दर लता है। उसका मुख-मडल सु दर पुष्प है। उसकी ग्रीवा उस मुखरूपी पुष्प की सुभग नलिका है उसके काले और कोमल केश इस प्रकार शोभा देते हैं, मानो पुष्प पर भौंरे वैठे हैं।

सचमुच वडा ही सु दर सुमन है। यह पुष्प तो कवि की प्रेम-वाटिका का मालूम होता है। क्या अच्छा होता, यदि विधि हमको इस वाटिका की बुलबुल वना देता। सु दर-सु दर सुमनों के सौंदर्य का खूब निरीक्षण किया करते। पुष्पों को मीठे-मीठे तराने सुनाया करते, और इस प्रकार खुद शाद होते और उन सुमनों को शाद करते। उनके द्वारा सौंदर्योपासना का पाठ भी पढ़ लेते।

लट की लपेट

सिर कुच मनार पहार पै, [illegible]।
[illegible] हैं के साथ, [illegible]।

स्त्री के कुच ही मलयाचल पर्वतावली के दो उत्तम शृंग हैं। उन पर कामिनी का चंद्रवर्ण का कलिकाकंठ ऐसा प्रतीत होता है, मानो चंदन का वृक्ष खड़ा हो। इसी को स्पर्श करती हुई उसकी काली, टेढ़ी और लंबी लटें ऐसी मालूम होती हैं, मानो नागिनें आ लिपटी हैं।

कहिए, कैसा दृश्य रहा? सच तो यह है कि बहुत थोड़े भाग्यशाली पुरुषों को यह दृश्यावली देखने को मिलती है। और उन थोड़ों में भी कई ऐसे होते हैं, जो इस दृश्य को देखकर भी दृष्टि को पवित्र नहीं करते हैं। वे जड़-हृदय होते हैं। अतः कविजी ने बड़ी कृपा कर सर्वसाधारण रसिकों के लिये, जिनको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, परंतु जो हृदय से प्रेमी हैं, यह उसी के समान दृश्य दिखला दिया है, ताकि जब तब वे अपनी अंतरात्मा के पट पर इसका चित्रण कर प्राकृतिक सौंदर्य का-सा ही मज़ा उठावें। कहते हैं कि मलयाचल पर चंदन-वृक्ष बहुत हैं। उनकी विशेषता यह है कि साँप उनकी डालियों पर

सुंदर सुमन

धड़ बेली मुख सुमनवर, ग्रीवा नलिका मात ,
कारे कोमल कच मधुप, नाईं शोभा पात ।

नायिका का धड़ तो सु दर लता है। उसका मुख-मडल सु दर पुष्प है। उसकी ग्रीवा उस मुखरूपी पुष्प की सुभग नलिका है। उसके काले और कोमल केश इस प्रकार शोभा देते हैं, मानो पुष्प पर भौंरे बैठे हैं।

सचमुच बड़ा ही सु दर सुमन है। यह पुष्प तो कवि की प्रेम वाटिका का मालूम होता है। क्या अच्छा होता, यदि विधि हमको इस वाटिका की बुलबुल बना देता। सु दर-सु दर सुमनों के सौंदर्य का खूब निरीक्षण किया करते। पुष्पों को मीठे-मीठे तराने सुनाया करते, और इस प्रकार खुद शाद होते और उन सुमनों को शाद करते। उनके द्वारा सौंदर्योपासना का पाठ भी पढ़ लेते।

प्रेम की प्रवीणता

[illegible]

इस वन में कौन पथिक नहीं भटका ? क्या किसी ने इसका पार भी पाया ? इसके अंदर प्रवेश करके क्या मनुष्यों ने निकलने की व्यर्थ चेष्टा न की ? कवि कविता कर हारे, परंतु—'जाको वर्णन करि थकें, शारद शेष महेश'—उसका भला वे कैसे वर्णन करते ? चितेरों की तो कुछ न चली। वे इस वन को चित्रण करने बैठ खुद ही चित्र बन गए, या चंचलचित्त होकर चुप रहे। सच है, इस वन के चित्र को चित्रित करके—'भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।' जिस वन के हाथियों की मदमाती चाल की समता सुंदरवन के हाथी भी नहीं पा सके, जिसमें निवास करनेवाले सिंहों की कटि के काट को हिमालय की तराई में रहनेवाले सिंह तक तरसते हैं, जहाँ मानसरोवर के हंस मौजूद हैं, जहाँ शुक, पिक, खजन, कपोत इत्यादि पक्षी, मीन इत्यादि जलचर, सर्प-सर्पिणी इत्यादि थलचर नित्यप्रति निवास करते हैं; जहाँ कभी न कुम्हलानेवाले कमलों तथा अन्यान्य फूलों

लिपटे रहते हैं। यह उन वृक्षों की प्राकृतिक शीतलता और सुगंध के ही कारण होता है। नहीं तो भला साँप-जैसा दुष्ट जंतु किसका साथी हो सकता है ? वह तो दूध पिलानेवाले अपने स्वामी पर भी मौका पाकर चोट कर देता है। उसकी भी आन नहीं मानता। यह तो चंदन की शीतलता और सौरभ की ही शक्ति है कि उस शैतान की शठता को शांत कर उसके स्वभाव को भी भुला देती है।

यही हाल है नायिका की लटों का। वे भी तो चोट करने में कुछ सर्प से कम नहीं हैं। उनको तो देखकर ही प्रेमी अपने आप मरने लगते हैं। परंतु देखिए, इन्हीं लटों ने नायिका के गले के संसर्ग से अपने दुष्ट स्वभाव को भुला दिया है। नायिका के गले की सुघरता, कोमलता और जवानी में अंग से निकलनेवाली सुगंध से लटें मुग्ध हो गईं और उससे जा लिपटी हैं। समय-समय पर आनंद-नृत्य कर-करके अपने हर्ष को प्रकट करने लगी हैं। पाठक, अब आपको इन नागिनों से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि जब तक प्रिया के चंदन-वृक्षरूपी कंठ से इन लट-नागिनों का संबंध रहेगा, तब तक इनका दुष्ट स्वभाव प्रकट नहीं सकेगा।

शृंगों को उपयुक्त स्थान समझकर, मन पर, भूलकर भटकने-वाले राहगीरों को राह दिखाने के लिये दूर-दूर तक प्रकाश फैलानेवाली दो मणियाँ रख दी थीं। अब भी यदि पथिकों को पथ न मिला तो उनके दुर्भाग्य का दोष है।

रात-दिन भ्रमर मँडराते रहते हैं, जहाँ काली कस्तूरी के मद में मस्त मृग अन्यान्य वन के निवासी मानी मृगों का मान भग कर देते हैं, जहाँ कदली, चंपा, रसाल, चदन इत्यादि वृक्षों के घने कुज, सोनजुही, चमेली, लाजवती इत्यादि लताओं से छाए हुए तथा गुलाब, अनार, अगूर इत्यादि पौदों से घिरे हुए हैं, जहाँ अमृत, वारुणी, शख, चद्र, ऐरावत, धनुप इत्यादि समुद्र से निकले हुए रत्न तक मौजूद हैं, जहाँ अनेक प्रकार के टेढे-मेढे नदी और नाले हैं, अथाह कूप व तालाब हैं, जहाँ पहाडो में अगम दर्रे और घाटियाँ हैं, जहाँ कभी-कभी ज्वालामुखी पर्वत से ज्वाला निकलकर सबको जलाती है, तूफान चलते रहते हैं, वर्षा होती रहती है, जहाँ मतवाले मीणो और डरावने डाकुओं का डर है और जहाँ बैठे हुए शिकारी, जानवरों का शिकार न करके बेचारे भूले-भटके बटोहियों का ही शिकार खेलते हैं। भला ऐसे वन में भ्रमण करके किसको भय-भ्रम नहीं होता। फिर जहाँ पहले से ही अधकार है, वहाँ रात के घोर अधकार मे चलनेवाले थके-माँदे पथिकों की मुसीबत का तो कहना ही क्या है।

यह आश्चर्यजनक जगल प्रेम-नामक राजा के राज्य में है। प्रेमदेव बड़े बुद्धिमान हैं और प्रजा की रक्षा करने में तत्पर पड़ते हैं। देखो, झट उन्होंने कुचरूपी पर्वतों के ऊँ

मन ही हुआ। पहले ही यदि यह सोच लेता कि नारायण-जैसे विश्वम्भर को धोखा देना असंभव है, तो क्यों इतना दुःख उठाता। परन्तु धन्यवाद ! प्रभो ! आप बड़े कृपालु हैं, उन्होंने अपने इस दास भोले भक्त पर मदन का इतना मोह देखकर इन फलों को तोड़ने क्रिया से ही इतना अनुपम रस प्रदान कर दिया कि उसे उन्हें तोड़ने की इच्छा तक न रही। वह नित्य उन्हें देखकर ही अखंड आनंद का अनुभव करने लगा। वह शीत-फल का बड़ा शौकीन मालूम होता है, नहीं तो उनके पीछे अपनी जान तक जोखिम में क्यों डालता।

पाठक ! यदि विश्वंभर को प्रसन्न रखना है, तो आप इन फलों को तोड़ने का कभी व्यर्थ प्रयास न करें, जहाँ तक हो सके इनसे बचकर ही चलें—इन्हें देखें तक नहीं—नहीं तो, लेने के देने पड़ जायँगे। शंकर हमेशा तो भंग के नशे में रहते ही नहीं, जो मदन की तरह आपको भी माफ कर देंगे।

मदन का मोह

कुच बीलहिं माली मदन, निशि में तोरन चाहि,
बीलपत्र शिव सिर चढ़त, समुझि हिए सकुचाहि।

हजरत मदन माली का वेश बनाकर रात के समय चोरों की तरह कुचरूपी बील-फल को तोडने जाते हैं। परतु जब यह खयाल होता है कि यह उसी वृक्ष के फल हैं जिसके पत्ते श्रीमहादेवजी के सिर पर चढ़ते हैं, तब उन फलों पर शकर की कृपा समझकर और 'मदन-दहन' की याद करके, नानी याद आने लगती है, और पेट में छठी का दूध तक नहीं पचता। हृदय में बडा भय और सकोच होता है, परतु आप ठहरे चोरों और डकैतों के सरताज—भला इतने ऊँचे टाइटिल होल्डर होकर कही काम मे विना हाथ डाले रह सकते हैं। उन्हें चाहे सफलता हो या न हो, परतु पहले ही हिम्मत हार देने से उनकी सात पीढी तक लज्जित न हो जायँ। मन मे लालच भी है, और यह जानकर कि रात्रि में माली के वेश में उन्हें कौन पहचानेगा, कुछ धैर्य भी है। लो! आपने हिम्मत करके ज्यों-त्यों हाथ तो बढा ही दिया। परतु हुए आखिर निराश ही, शिवजी की कृपा से बील तो नहीं टूटा, किंतु मनसिज का

बहुत ही ऊँचे और अगम्य करारे हैं, जिनके बीच में से होकर छलछल बहती हुई, पति के पावन प्रेम से भरी हुई प्रेम-पयस्विनी बह रही है। यह जिसके प्रेम की नदी है, वही इसमें स्नान कर सकता है; परंतु कल-कल-कल दर्शनानंद और उसकी कलकल ध्वनि के श्रवणानंद से तो हम भी वंचित न रक्खे जायँगे। और, इतना ही बहुत है। हमें थोड़े में ही संतोष कर लेना चाहिए। चलो हम संतोषामृत ही पान करके अपनी प्रेम पिपासा शांत कर लें।

देखिए पाठक, हठ न कीजिए, उन करारों तक पहुँचना तो दूर रहा, उनको देखना तक टेढ़ी खीर है। फिर जो कहीं ऊपर दृष्टि पड़ गई, तो हम खिचकर उस नदी में जा गिरेंगे। आपने पहले तैरना तो सीख लिया है न? परन्तु यहाँ तो बड़े-बड़े तैराकों तक की ताकत काम नहीं करती। फिर हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या है? अत हमें उचित है कि हम इस नजारे से दूर ही रहें।

प्रेम-पयस्विनी

पिय के पावन प्रेम की, बहत बीच जलधार,

उरज ताहि के मनहु द्वै, ऊँचे अगम करार।

कविजी के कल्पना-राज्य की भूमि को उर्वरा बनाती हुई, सावन-भादो की घरघराहट करती हुई, गहरी नदी बह रही है। इसका नाम प्रेम-नद है। और-और नदियाँ वर्षा ऋतु में मैली होकर रज स्वला हो जाती हैं, परन्तु यह नदी तो 'पिय के पावन प्रेम-जल' से ही बारहों महीने भरी रहती है। ज्यों ज्यों जलवृद्धि होती है, त्यों त्यों शुद्धि होती जाती है। इस प्रेम महानद से गहरी नदी शायद ही ससार में और कोई हो। यह जल से ओतप्रोत भरी रहने पर भी निर्मल है। मल तो इसे छू तक नही गया। चलिए पाठक! हम भी इस नदी में स्नान करके अपने पापों को बहा दें, और कवि को धन्यवाद दें। यह तो मानी हुई बात है कि नदी जितनी ही ज्यादा तेज चलेगी, उतने ही करारों को काट-काटकर ऊँचा बनाए जायगी। फिर यह प्रेम-नदी का प्रवाह तो ऐसे ऊँचे करारे बनाता होगा, जो बेचारे दूसरे लोगों को तो क्या—'कविनामप्यगम्यम्' हैं।

नायिका के ऊँचे उठे हुए कुच ही मानों इस नदी के दो

एक पंडाल मदनराज की चाल है, जिससे यहाँ मुश्किल से डूबनेवाले मन अब सहज ही में डूब जायँगे। पहले इस समुद्र में दूर भागनेवाले मन भी अब इन आधारों को देखकर मोहवश चक्कर में आ जाते हैं। बेचारे भक्त की समझ में कुछ नहीं आया, किया तो भले के वास्ते, हो गया और भी बुरा।

आश्रयहीन के आधार

तिय छवि छीर अपार में, बूडत मन मँझधार,
तलफत वाको देखि विधि, किए कुचनि आधार।

दस इंद्रियों से शरीर बना है, और मन इंद्रियों का राजा है। फिर, यदि राजा ही डूब गया, तो प्रजा के डूबने में क्या बाकी रहा ? प्रजा-पति भाडे घड-घडकर छोडता है, परतु वे उसी के बनाए हुए, स्त्री के शोभारूपी सागर में डूब जाते हैं। यह देखकर वह हैरान हुआ, परतु दोनों में स एक को भी उसने नष्ट न किया, क्योंकि दोनों ही उसकी सृष्टि थीं। करोडों इसी तरह से तडफ-तडफकर इस अपार छवि-सागर की तरल-तरगों के बीच मे डूबने लगे, परतु विधि को कोई उपाय नही सूझा। मालूम होता है, उन्होंने अत में हारकर कामदेव की सहायता ली। काम महाराज तो पहले से ही पुराने घाघ थे ही, आपने तुरत राय दी होगी—"इस समुद्र में दो ऐसे आधारस्वरूप पर्वत बना दीजिए, जिनसे इसका सौंदर्य भी बढे, और बेचारे गरीबों के मन भी न डूबें।" विधाताजी आपकी चाल में आ गए और कुच रूपी दो आधार बना दिए, परतु यह नही जाना कि य

गुरु घंटाल महाराज की चाल है, जिसमें पहले मुश्किल से डुबोनेवाले मन अब सहज ही में डूब जायेंगे। पहले इस समुद्र से दूर भागनेवाले मन भी अब इन आधारों को देखकर मोहवश भँवर में आ जाते हैं। बेचारे ब्रह्मा की समझ में कुछ नहीं आया, किया तो भले के वास्ते, हो गया और भी बुरा।

आश्रयहीन के आधार

तिय छवि छीर अपार में, बूडत मन मँझधार,
तलफत वाको देखि विधि, किए कुचनि आधार।

दस इंद्रियों से शरीर बना है, और मन इंद्रियों का राजा है। फिर, यदि राजा ही डूब गया, तो प्रजा के डूबने में क्या बाकी रहा? प्रजा-पति भाडे घड-घडकर छोडता है, परन्तु वे उसी के बनाए हुए, स्त्री के शोभारूपी सागर में डूब जाते हैं। यह देखकर वह हैरान हुआ, परन्तु दोनों में से एक को भी उसने नष्ट न किया, क्योंकि दोनों ही उसकी सृष्टि थी। करोडों इसी तरह से तडफ-तडफकर इस अपार छवि-सागर की तरल-तरगों के बीच में डूबने लगे, परन्तु विधि को कोई उपाय नहीं सूझा। मालूम होता है, उन्होंने अंत में हारकर कामदेव की सहायता ली। काम महाराज तो पहले से ही पुराने घाव थे ही, आपने तुरत राय दी होगी—"इस समुद्र में दो ऐसे आधारस्वरूप पर्वत बना दीजिए, जिनसे इसका सौंदर्य भी बढे, और बेचारे गरीबों के मन भी न डूबें।" विधाताजी आपकी चाल मे आ गए और कुच-रूपी दो आधार बना दिए, परन्तु यह नहीं जाना कि यह

नयन-नैया

[illegible]

[illegible]

नैनों का सौंदर्य अपार और अगाध सागर के सदृश है। इसकी शोभारूपी तरल तरंगों में पड़कर रसिकों की नयन-रूपी नाव इधर से उधर टक्कर खाती फिरती है। समुद्र में जगह-जगह चट्टान और आवर्त हुआ करते हैं, जो नावों को नष्ट कर देते हैं। समुद्र के किसी भयानक स्थान पर, जिस प्रकार कोई परोपकारी यात्री अन्य यात्रियों को भय से सावधान कर देने के लिये 'लाइटहाउस' बना देता है, उसी प्रकार यहाँ इस तूफ़ानी सौंदर्य-सागर में पड़कर दुःख पाए हुए अनुभव-शील यात्री विधि ने कुच गिरि को ऊँचा स्थान जानकर उसकी दो चोटियों पर चूचिकाओं के रूप में दो दीपक ऐसे जला दिए हैं, जिनकी ज्योति अखंड है। जिससे भूले-भटके भोले यात्रियों को मालूम हो जाय कि इन पहाड़ों के बीच का समुद्र अत्यंत भयंकर है, यहाँ पर बहुत-से भँवर पड़ते हैं, जिनमें पड़कर नयन-नाव चक्कर लगाने लगती है, परंतु आगे नहीं बढ़ सकती, और अंत में वेग से दोनों

कालिंदी में कनक-कलश

नील कचुकी ओट तिय, कुच इमि सोभा पाहिं,
विमल यमुनजल कनक-घट, कछु-कछु बूड़त जाहिं।

प्रिया की नीले रग की कचुकी ही मानो यमुना का निर्मल और नीला जल है। उस कचुकी में से उसके सुदर, सुघर और चमकीले कुच इस प्रकार शोभा देते हैं, मानों जल भरते समय किसी स्त्री के हाथों से छूटकर सोने के घडे यमुना-जल मे कुछ-कुछ डूबते जा रहे हैं।

मगर पाठको! इन घड़ों के भरोसे आप नारी के नेह-रूपी नद मे न कूद पडना, आप देख चुके हैं कि ये डूबते हुए घड़े हैं। अत आपको भी साथ ले डूबेगे। आप इनका सहारा तकते हैं। मगर वे क्या सहारा देंगे, उन खुद की जान आफ़त में है। वे तो खुद डूबते हुए की नाई दूसरों का सहारा तक रहे हैं।

नयन-नैया

[illegible]

[illegible]

स्त्री का सौंदर्य अपार और अगाध सागर के सदृश है। इसकी शोभारूपी तरल तरंगों में पड़कर रसिकों की नयन-रूपी नाव इधर से उधर टकर खाती फिरती है। समुद्र में जगह-जगह चट्टान और आवर्त हुआ करते हैं, जो नावों को नष्ट कर देते हैं। समुद्र के किसी भयानक स्थान पर, जिस प्रकार कोई परोपकारी यात्री अन्य यात्रियों को भय से सावधान कर देने के लिये 'लाइटहाउस' बना देता है, उसी प्रकार यहाँ इस तूफ़ानी सौंदर्य-सागर में पड़कर दुःख पाए हुए अनुभव-शील यात्री विधि ने कुच-गिरि को ऊँचा स्थान जानकर उसकी दो चोटियों पर चूचिकाओं के रूप में दो दीपक ऐसे जला दिए हैं, जिनकी ज्योति अखंड है। जिससे भूले-भटके भोले यात्रियों को मालूम हो जाय कि इन पहाड़ों के बीच का समुद्र अत्यंत भयंकर है, वहाँ पर बहुत-से भँवर पड़ते हैं, जिनमें पड़कर नयन-नाव चक्कर लगाने लगती है, परंतु आगे नहीं बढ़ सकती, और अंत में वेग से दोनों पहाड़ों की

कालिंदी में कनक-कलश

नील कचुकी ओट तिय, कुच इमि सोभा पाहिं ।
विमल यमुनजल कनक-घट, कछु-कछु बूड़त जाहिं ।

प्रिया की नीले रग की कचुकी ही मानो यमुना का निर्मल और नीला जल है। उस कचुकी में से उसके सुदर, सुघर और चमकीले कुच इस प्रकार शोभा देते हैं, मानों जल भरते समय किसी स्त्री के हाथों से छूटकर सोने के घडे यमुना-जल मे कुछ-कुछ डूबते जा रहे हैं।

मगर पाठको ! इन घडों के भरोसे आप नारी के नेह-रूपी नद मे न कूद पडना, आप देख चुके हैं कि ये डूबते हुए घडे हैं। अत आपको भी साथ ले डूबेंगे। आप इनका सहारा तकते हैं। मगर वे क्या सहारा देंगे, उन खुद की जान आफ़त मे है। वे तो खुद डूबते हुए की नाईं दूसरों का सहारा तक रहे हैं।

नयन-नैया

[illegible] सागर मैं, [illegible] ।

[illegible] हारक [illegible], [illegible] ।

स्त्री का सौंदर्य अपार और अगाध सागर के सदृश है। इसकी शोभारूपी तरल तरंगों में पड़कर रसिकों की नयन-रूपी नाव इधर से उधर टक्कर खाती फिरती है। समुद्र में जगह-जगह पहाड़ और आवर्त हुआ करते हैं, जो नावों को नष्ट कर देते हैं। समुद्र के किसी भयानक स्थान पर, जिस प्रकार कोई परोपकारी यात्री अन्य यात्रियों को भय से सावधान कर देने के लिये 'लाइटहाउस' बना देता है, उसी प्रकार यहाँ इस तूफ़ानी सौंदर्य-सागर में पड़कर दुःख पाए हुए अनुभव-शील यात्री विधि ने कुच-गिरि को ऊँचा स्थान जानकर उसकी दो चोटियों पर चूचिकाओं के रूप में दो दीपक ऐसे जला दिए हैं, जिनकी ज्योति अमंद है। जिससे भूले-भटके भोले यात्रियों को मालूम हो जाय कि इन पहाड़ों के बीच का समुद्र अत्यंत भयंकर है, यहाँ पर बहुत-से भँवर पड़ते हैं, जिनमें पड़कर नयन-नाव चक्कर लगाने लगती है, परंतु आगे नहीं बढ़ सकती, और अंत में वेग से दोनों पहाड़ों

प्रेम-दान-पत्र

रात केलि किय पीय मन, नग्न छत दिन इमि मोहिं,
दानपत्र वा प्रेम के, हेमाच्छर मनु होहिं।

काम का आवेश भी गजब करता है। इससे तो ऐसा बौरा जाता है कि जिस वस्तु को वह अपने हृदय ज्यादा प्रिय समझता है, उसी को क्षति पहुँचाते हुए कुछ भी सकोच नहीं करता। सकोच का तो सवाल है, वह तो बेचारा अपने आवेश में ही इतना मस्त र कि अपने प्रिय के हानि-लाभ का उसे विचार तक नहीं र सच है, मदन महाराज के प्रेम-साम्राज्य में सभी व्य अनोखे हैं। उनके औचित्य-अनौचित्य का विचार करना भूल है।

खैर, सुनिए, हाल यह हुआ कि नायक बहुत समय के बाद मिलन हुआ। बेचारे व्यथित थे। अब भी अपने वास्तविक प्रेम की कोई सलाह दे, तो सरासर है। अस्तु। मिलन-दृश्य का समुद्र के साथ समा

प्रेम-दान-पत्र

रात केलि किय पीय मन, नख छत दिन इमि सोहिं,
दानपत्र वा प्रेम के, हेमाच्छर मनु होहिं।

काम का आवेश भी गजब करता है। इससे तो मनुष्य ऐसा बौरा जाता है कि जिस वस्तु को वह अपने हृदय से भी ज्यादा प्रिय समझता है, उसी को क्षति पहुँचाते हुए मन में कुछ भी सकोच नही करता। सकोच का तो सवाल ही क्या है, वह तो वेचारा अपने आवेश मे ही इतना मस्त रहता है कि अपने प्रिय के हानि-लाभ का उसे विचार तक नहीं रहता। सच है, मदन महाराज के प्रेम-साम्राज्य मे सभी व्यापार अनोखे हैं। उनके औचित्य-अनौचित्य का विचार करना भारी भूल है।

खैर, सुनिए, हाल यह हुआ कि नायक और नायिका का बहुत समय के बाद मिलन हुआ। बेचारे विरह-वेदना से व्यथित थे। अब भी अपने वास्तविक प्रेम को सीमा के अंदर रखने की कोई सलाह दे, तो सरासर अन्याय है। और यह हो भी कैसे सकता है। अस्तु। मिलन-दृश्य वैसे ही जोश का रहा, जैसे सरिता का समुद्र के साथ समागम होने पर रहता है।

दोनों ओर से सीमा का उल्लंघन हो गया। दोनों का प्रेम इस प्रकार एक दूसरे में समा गया कि 'दो कालिब एक जान' हो गए। दोनों ने दिल भरके केलि की। प्रेमावेश में नायक ने नायिका के फूल की पंखुड़ी-जैसे कोमल गात पर, जो नख-क्षत बना दिए थे, वे दिन में विचित्र छटा दिखलाने लगे। कविजी ने उनके लिये एक उपयुक्त उत्प्रेक्षा की है। प्रेमावेश के फल-स्वरूप ये नख-क्षत, पत्र-सदृश नायिका के सुकोमल और स्निग्ध शरीर पर पड़े हुए, दिन में मानों स्वर्णाक्षरों की तरह शोभा देते थे। रात की प्रेमदानलीला की, भविष्य के लिये, एक दामी सनद मौजूद थी।

कामिनी का कूप

सरस नाभि गभीर तिय, माया-कूप जु एक ,
मन प्राणी तँह फँसि रह्यो, भ्रमत न निकसै नेक ।

कूप में गिरना कोई खेल नहीं है। वहाँ तो, जो गिरते हैं, उनमें से सैकडे पीछे निन्यानवे जिंदगी से हाथ धो बैठते हैं। परतु आप कहेंगे कि क्या कुँआँ कोई ऐसी भयावनी राक्षसी है कि जिससे बचना सर्वथा मुश्किल है। आपका उज्र बजा है। कुँएँ से बचना बडा सहल है। जरा-सी सावधानी—चैतन्यता की जरूरत है, फिर तो कोई डर नहीं। परतु पाठक ! हमारा भी फर्ज है कि किसी अलक्ष्य भय से आपको सावधान कर दें।

सुनिए, स्त्री-सौंदर्य-ससार में एक अनूठा कूप है। वह कूप ऐसा-वैसा नहीं कि साधारण नियमों का पालन कर उससे छुटकारा पा जायँ। वह तो माया-निर्मित है। उसके कोसो दूर-दूर तक का स्थल ऐसा सुदर और मनोहारी है कि ससारी जीव उसके आकर्षण से नहीं बच सकता। आखिर विहार करता-करता उसके पास ही पहुँच जाता है। फिर तो ऐसी गुदगुदी, चमकीली और चिकनी ढालू जमीन आती है कि कितना ही बचाव क्यों न करें, पैर रपटते-रपटते उसी माया-कूप में गिरने

से ही गति होगी। कूप के अन्दर का दृश्य तो देखकर दिमाग चक्कर खाने लगेगा। माया ने कूप अत्यन्त सजाकर उसमें ऐसे-ऐसे कोमल, सुन्दर और मन लुभाने फंदे फैलाए हैं कि गिरते ही जीव उसमें फँस जाता है। अत्यंत कोशिश करता है कि निकल जाऊँ, पर वे सब यत्न निष्फल होते हैं। तेली के बैल के सदृश घूम-घामकर आखिर उसी जगह आ टिकता है। अच्छी भूलभुलैयाँ है। क्यों न हो, मायादेवी ने इसकी रचना की है।

सावधान हो जाइए, इससे कोसों दूर रहिए, थोड़ा भी पैर इधर बढ़ाया कि जादू की पुतली की तरह अपने आप खिंच आएँगे, और अंत में वही हाल होगा, जो सबका होता है।

छवि-छाक

कुच-पर्वत छवि छकत ही, परो पेट के गाढ ,
बामें मो मन फँसि रह्यो, सकत न कोऊ काढ ।

मधु मास में मुदित मन मधुप को मृदु मजरी पर मस्त होकर मँडराता हुआ और मजुल मालती तथा मल्लिका के मुकुलित मुकुलों के मधु-मकरद के लिये मरता हुआ देखकर, मतवाले मन महाराज मोहित हो गए, और उनके मन में आई कि किसी महीधर-माला पर चलकर मलयज मकरद-मय, मद मारुत का सेवन करें और मनोहर मदिरों मे मन को एकाग्र करके माधव की मान-लीलाओं पर मनन करें, तथा मन-मदिर में मनमोहन की मनमोहिनी और मानिनियों के मान-मर्दन करनेवाली मधुर मुरली की मीठी तान को मौन होकर ध्यान-पूर्वक सुनें । यह मन में आते ही आप मेल-ट्रेन से भी तेज, मानसिक ट्रेन पर सवार होकर पलक झपकते ससार के समस्त शैलों से सुदर कुच-पर्वत-माला पर जा पहुँचे । इन पर्वतों के नीचे उपजाऊ उपत्यका थी । फिर दूर-दूर तक मैदान में मयक मयूखों के मीठे और मद प्रकाश में अनेक प्रकार के दर्शनीय दृश्य दृष्टिगोचर होते

है। दो सुंदर और सुघर पर्वत अपनी गगन-चुंबी चमकीली चोटियों को गर्व-पूर्वक ऊँचा उठाए खड़े हैं। दोनों रंग-रूप, चमक-दमक, कोमलता तथा काठिन्य में एक ही जैसे हैं। दोनों पहाड़ों के बीच में बड़ी गहरी घाटी है। इस घाटी में से होकर कलकल करती हुई, कलकारिणी, प्रेम पय से भरकर उमड़ती और इठलाती हुई, त्रिवलीरूपी सुंदर वन में से होकर पेट के सौंदर्य-समुद्र नाभी में जा गिरी है। उर-मलय में मलयज मारुत, मंद-मंद गति से सीत्कार के स्वर में बहकर, कुच-पर्वतों पर सैर करनेवाले शौकीनों के मनों को मोहित कर रही है। फिर मन महाराज तो खुद मन ही ठहरे, इनके मन कहाँ था, अतः आप स्वयं ही मन होने के कारण कुच-गिरि के छवि-छाक से छककर और मलय-पवन के सुगंधयुत शीतल और मंद प्रवाह पर मुग्ध होकर लट्टू बन गए, और लगे लट्टू की तरह घूमने। आपको यह याद न रहा कि आप पर्वतों की लाल-लाल चोटियों की एक चट्टान पर चढ़कर बैठे हैं। मग्न होकर आप सुध-बुध बिसर गए। बस फिर क्या था, पैर डिगते ही बिन पैर का मन डिग गया और उत्तुंग शिलोच्चय शृंग से लावण्य भरे हुए पेट के पाट में गिर पड़ा और उसके पानी के प्रवाह में प्रवाहित होकर समुद्र के सबसे गहरे स्थान

नाभी मे जा रहा। फिर भला हाथ-पैर पटकने और पर फडा-फडाने से क्या होता था ? बहुतेरा रोया-चिल्लाया, पर वहाँ कौन सुनता था ? अति सूक्ष्म होने के कारण, और इतने गहरे पानी में गर्क होने के कारण, उसको कौन देख पाता ? फिर जो कोई देख-सुन भी ले, तो हिम्मत करके निकालने कौन जावे ? दूसरो को वहाँ से निकालना तो दूर रहा, खुद ही उसमे प्रवेश करके कोई नही निकल सकता।

आजकल पाश्चात्य सभ्यों की सभ्यता की नकल करनेवाले हमारे पर्वत-प्रेमी भाइयों की भी यही दशा है। ऊँचे चढकर गिरे हुए, उनको पाश्चात्य शिक्षा के गाढ से निकालना कठिन ही नहीं, असभव-सा जान पडता है।

अगम अर्णव

त्रिय छबि भवसागर बिँ, को करि सकिहैं पार ;
मन मादर बह त्रिबलि जहँ, लोभ, मोह, मद मार ।

पंडितों का मत है कि यह संसार एक माया-जाल है, जिसमें माया ने ऐसे ऐसे प्रलोभन रक्खे हैं कि जीव-पथिक उसके चंगुल में फँसकर भूलभुलैयाँ में पड़े हुए अजनबी की तरह चक्कर खाने लगता है, परंतु रास्ता नहीं पा सकता। बीच-बीच में लोभ, मोह और काम इस प्रकार से आ उपस्थित होते हैं कि बेचारा जीव-पथिक इनकी ऊपरी तड़क-भड़क और मनमोहक छवि देखकर इनको अपना हितैषी समझकर इनके फंदे में फँस जाता है। एक बार फँसने पर फिर निकलना मुश्किल हो जाता है। इससे बचाना तो उस परब्रह्म की ही सामर्थ्य में है। उसी की भक्ति से इनका वास्तविक रूप समझ में आ सकता है, और तभी इनका त्याग भी हो सकता है। परंतु ज़रा सोचने पर मालूम होगा कि इस संसार को भी सफलता पूर्वक पार करना कोई मुश्किल बात नहीं है। भगवद्भक्ति इसके लिये एक अच्छा उपाय है। वह कठोर हो, तो हो, परंतु असंभव तो कदापि नहीं है। किंतु दूसरी ओर चलकर देखिए। नायिका के छविरूपी वृहत संसार को

पार करना बडी टेढी खीर है। उसके प्रलोभनों से तो बच निकलना मानो अनहोनी होनी हो जाना है।

ससार में जब जीवात्मा आता है, और अपनी लबी यात्र शुरू करता है, तो पहले तो उसकी यात्रा विपयो द्वारा वाधित नहीं होती। परतु यात्रा के बीच तक पहुँचते-पहुँचते वह उनके फेर मे फँस रहता है। इसी प्रकार इस तिय-छवि-ससार में पहले तो जीव की यात्रा सुख-पूर्वक व्यतीत होती है, परतु जहाँ बीच यात्रा में पहुँचा, तो ऐसे जाल में फँसता है कि एक बार तो प्रभु भी बचावे, तो मुश्किल है। त्रिबली के मनमोहक, चमकीले और सुदर जाल में इस बुरी तरह से फँस जाता है कि फिर वहीं धक्के खाता रहता है। बचानेवाला भी कोई पास नही रहता। अजनबी जानकर कोई रक्षा के लिये नहीं दौडता। उलटे निकालने के मिस कोई और ज्यादा भले फँसा जाय। बेचारा इस शोचनीय दशा में पडा-पडा जिदगी बिताता है। आगे बढने और बाकी मजिल तय करने की आशा, निराशा-मात्र हो जाती है।

पाठक! सावधान हो जाइए, भूलकर भी इस राह पर न जाइए, अन्यथा बुरा होगा। बढने पर रोग ऐसा असाध्य हो जायगा कि डॉक्टर भी छूत के भय से दूर भागने लगेंगे। परमेश्वर तिय-छवि ससार के इस आवर्त से बचावे।

झलाई किधौं कोप

सिर धारन मदरा दिए, क्यों चालति इठलाति,
कनक किधौं गरुआय निज, ... निरखति जाति।

आजकल संसार में नई-नई खोजों और आविष्कारों की भरमार है। थोड़े दिनों में विज्ञान विशारदों ने तो इस ओर खूब करामात दिखाई है। कभी उन्होंने बंदरों से बातचीत करना सिखाया, तो कभी मनुष्य को आकाश में उड़ना बताया। चीजें भी बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक बनी हैं। भला, आविष्कार का बाजार जब इतना गर्म था, तो अकेले हमारे कविवर ही किससे पिछड़ते। वे भी अपने कल्पना-पूर्ण मस्तकरूपी औजार को लेकर आविष्कार करने चले। खूब भटके। आखिर चलते-चलते आपने एक नायिका को मस्त चाल से, इठलाती हुई, चलते देखा। देखकर इसके इस प्रकार चलने का कारण सोचने लगे। भला मस्तिष्क के सामने ऐसी कौन सी कठिन समस्या है, जो हल न हो सके। तिस पर भी ये तो कवि ठहरे ! इनका तो कार्य ही यही था कि विचित्रता के पीछे सिर खपाया करें। लगे खूब ध्यान-पूर्वक विचारने। सोचते-सोचते सिर पर पसीना हो आया, पर कारण न सूझा। अंत में ईश्वर की कृपा हुई, आपको

मिल ही गया। नायिका की हथेली पर लगी हुई लाल मेंहदी को देखकर एक भाव सूझा। नायिका भी अपनी हथेली को निरखती हुई जा रही थी। अब क्या था, कविजी अपनी उद्दिष्ट खोज को पा गए। उन्होंने दुनिया में बडा भारी आविष्कार कर डाला।

वह यह था कि जिस प्रकार कॉच के पीछे लाल रग की कलई लगी रहने से ही उस पर मनुष्य का प्रतिबिब पड़ सकता है, और वह उसमे अपनी रूप-शोभा को देख सकता है, उसी प्रकार नायिका के, कररूपी कॉच की हथेली पर, मेहदीरूपी लाल कलई किए जाने पर, हाथ की द्युति और आभा इतनी वढ गई कि नायिका का सु दर मुखडा उसमें प्रतिबिबित होने लगा। अत अपने कररूपी दर्पण मे अपना छवि-सौंदर्य देख-देखकर वह इठलाती हुई चली जाती थी। यह तो आविष्कार खूब हुआ। बहुत-से छोटे-छोटे सुदर और कौतुकोत्पादक दर्पण निकले, जेवी दर्पण और डायरी पर के दर्पण निकले। यहाँ तक कि डासन कपनी के बूट भी ऐसी पालिश करके चमकीले वनाए गए कि दर्पण की जरूरत ही न रही। जब चाहो, तब उनमे मुख देख लो! सब कुछ हुआ, परन्तु इस प्रकार का दर्पण अब तक नही निकला था। कविजी के इस दर्पण ने तो सब दर्पणों के दर्प को दलित कर

सिखाया। ऊपर के गहनों को तो प्रयत्न पूर्वक साथ रखना पड़ता है, परंतु यह काँच तो कुदरती तौर पर ही हमेशा साथ रहता है। यह तो भूला भी नहीं जा सकता। फिर इस प्रकार के किसी काँच की आजकल के ज़माने में ज़रूरत भी तो बड़ी भारी थी, क्योंकि आजकल 'फैशनेबल' संसार में रूप शोभा निरखने को काँच अत्यंत आवश्यक चीज़ हो रहा है। अच्छी तरह 'पियर सोप' से मुँह रगड़ा गया हो, 'पोमेड वैसलिन' मला गया हो, फिर नए ढंग की 'अप-टु-डेट' माँग सँवारी हो और अगणित प्रकार के 'लैवेंडर' लगाए हों, परंतु एक दर्पण के बिना यह सब वृथा है।

कविजी! आपके इस आविष्कार के लिये समस्त फ़ैशनेबल संसार ऋणी है। आपने तो नायिकाओं के लिये ही बताया था, परंतु अब तो नायक भी इसका गुण समझ गए हैं। वे भी इसे धारण करेंगे। निश्चय है कि माँग जल्द ही बढ़ेगी, अतः हमारी राय है कि आप शीघ्र इस कलई का व्यापार खोल दीजिए। पौबारह पचीस हो जायँगे। हम तो आपको सावधान कर देते हैं कि आप इसका 'पेटेंट राइट' करवा लीजिए, नहीं तो और-और लोभी व्यापारियों के चेत जाने पर आप इस फायदे से हाथ धो बैठेंगे।

सरस सैनिक

स्निग्ध गुलाबी नख यहै, तिय कर पद इमि दीस,
विधि छबिपुर रच्छाहित, किए सुसैनिक बीस।

कल्पना कैसी बढिया है ! किस युक्ति से 'छविपुर' की रक्षा के लिये बीस सिपाही तैनात किए हैं, ठीक है। ऐसा तो होना ही चाहिए। आजकल कलियुग का जमाना है। विश्वास दिन दिन ससार से उठा जा रहा है। जिधर देखो, उधर सब कोई अपना-अपना स्वार्थ साधने मे लगा है। जहाँ कहीं किसी अरक्षित वस्तु को देखा, तो झटपट उस पर एक साथ ही बहुत-से झपट पडते हैं। ऐसे कठिन समय में अगर छविपुर का गढ अरक्षित रहता, तो आश्चर्य नही कि कुटिल हृदय उस पर आँख गडाते और मौका पाकर उसके अदर का माल हरण करते। इस वास्ते पहले ही से सजग हो जाना ठीक है। छविपुर तो कोई ऐसा-वैसा कगाल का गढ है नही कि उसमें चोरी होने का डर ही नही। उसमें तो अनत परिमाण में रत्न भरे हैं। फिर उसको सूना क्यों छोडा जाय। परतु प्रश्न तो यह होता है कि उसकी रक्षा का विधान करे कौन ? वही न, जो उसका मालिक, कर्ता-धर्ता है ?

विधि ने ही बड़ी कारीगरी के साथ, दिमाग लगाकर इसको सर्वगुणसम्पन्न बनाया है, और वही इसका स्वामी है। अतः उसी पर इसकी रक्षा का भार पड़ा। रक्षा का जो विधान जुटाया, सो उसे देख-देखकर संसार चकित हो गया।

पाठक! गौर से देखिए, किस अपूर्व ढंग पर, किस प्रकार के सैनिकों द्वारा इसकी रक्षा करवाई है। पहले तो नम्र रूप सैनिकों को ऐसे-ऐसे अरक्षित स्थलों पर नियत किया, जिससे धूर्तों का पशु-आक्रमण सहज में न हो सके। पुनः एक ऐसी युक्ति निकाली कि आक्रमण करना तो दूर रहा, आक्रमणकर्ता इन सैनिकों तक आकर, इनकी रूप-शोभा और सहृदयता को देखकर ही पानी हो जाते हैं, और अपने कुटिल उद्देश्य को भूल जाते हैं। गुलाबी, स्वच्छ, चमकीली और आभापूर्ण वर्दी पहने हुए इनको देखकर कपटी हृदयों का कपट और ढोंग दूर हो जाता है। फिर ये सैनिक सरस भी हैं। इनकी स्निग्धता गजब ढाती है। आजकल के सैनिकों की तरह ये अहृदय, लट्ठमार, रूखे मिजाज और शिष्टता से शून्य नहीं हैं। ये तो हृदय में स्निग्ध हैं—दया-पूर्ण हैं। निस्सन्देह, इन गुणोंवाले ये बीस सैनिक जरूर इस छविपुर की रक्षा कर सकेंगे। क्यों न करें। इनका सरदार तो वही विधि ही है न!

हंसों की हँसी

किंकिनि की झनकार सुनि, हंस गए तिहि ओर,
मोती वाके हँसत ही, लगे चुगन वा ठौर।

बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी बाज़ वक्त बेवक़ूफ़ बन बैठते हैं। यही हाल हमारे नीर-क्षीर-न्याय करनेवाले हंसों का हुआ है। कोई अभिसारिका नायिका अपने प्यारे से मिलने जा रही है। वह किसी सरोवर के समीप से होकर गुज़र रही है। उसकी किंकिनी की मधुर रटन सुनकर हंसो के मन नाचने लगे। उन्होंने समझा 'कोई मुग्ध मरालिनी अपने टोल से बिछुड़कर इधर आ निकली है।' सबके सब कामोन्मत्त हो उठे और इस नव-वधू को वरने की उत्कंठा के कारण बिना कुछ जाने-बूझे उधर दौड़ पड़े। 'कहीं वह नवेली पहले पहुँचनेवाले को ही पसंद करे।' यह ख़याल करके वे अपनी असली चाल छोड़कर घुड़दौड़ दौड़े। परंतु पलक झपते ही धोखे की टट्टी टूट गई, आगे जाकर देखते क्या हैं कि कोई सुंदर स्त्री सोलहों शृंगारों से सज-धजकर मरालिनी की तरह मतवाली और धीमी चाल से चल रही है। मोटे और सुडौल नितंबों पर कटि से लटककर पड़ी हुई किंकिनी उसकी पीन जंघाओं के आगे और

धनायमान होने के कारण हंसिनी की-सी मधुर रटन र है।

ारिका ने, मालूम होता है, पहले इनकी समझ की बड़ी ला सुनी थी। अतएव ऐसे समझदारों की मोहवश कथना देखकर उसकी हँसी न रुकी। वह खिलखिलाकर न हँस पड़ी। उसके हँसते ही चारों ओर मोतियों की- वर्षा होने लगी। हंसों ने अपनी जिन्दगी में ऐसे मोती न देखे थे। अत वे बड़े ही व्यग्र होकर मोती चुगने । परन्तु पाठक, यह लो, वे एक दफा धोखा खाकर भी ने और फिर धोखे में फँसे। आइए, इस बार हम तुम कर इन हंसों की हँसी उड़ाएँ।

वडों की वडाई

कच कपोल कामहि वढे, कुच कठोर दुति नैन,
निर्तवन मोटे होत तो, होत न कटि कहू चैन।

वय की वृद्धि होने के साथ-साथ केश, कुच, द्युति, नैन और कपोल भी बढे। केश लबाई और चिकनेपन में और कुच मुटाई और काठिन्य मे वढे। जिधर देखो उधर ही रोम-रोम से काति झलकने लगी। आँखो मे हर्ष, चपलता और प्रेम की वृद्धि हुई और कपोलों का लालित्य बढकर जी को ललचाने लगा। अपने मित्र और सहायकों को यो होडाहोडी बढते देख नायिका के मन में निवास करनेवाला मनसिज भी बढा—अर्थात् उसकी कामेच्छा भी वढी। फिर तो अत्यत धन की वृद्धि होने से जो उपद्रव होते हैं, वे होने लगे। कुचाली काम की कुप्रेरणा से कठिनता से कमाए हुए कीमती रत्नों को दोनों हाथो से, कहने ही के कगालों को, लुटाना शुरू कर दिया। फिर तो खजाना खाली होने में क्या देर थी।

पाठको, ऐसे रत्नों को वडे यत्न के साथ रखना चाहिए। जो कल कुछ भी नहीं थे, वे ही आज धन के मद में चूर हो कर, अपने निकट रहनेवाले मित्रों से बोलते तक नहीं। इन्हें

सहायता देना तो दूर रहा, उल्टा दुःख ही देते हैं। इसी मद में मस्त होकर कुच इत्यादि ने भोली-भाली, लचकीली और कोमल कमर पर जुल्म करने को कमर कस ली। वे उसे बुरी तरह से पावों तले कुचलने लगे। कठोर-हृदय काम से कहकर उस शरीरिणी की खूब दुर्दशा करवाई। वह बेचारी मुश्किल से टूटते-टूटते बची। देखा आपने, जो फल उसी पतली कमर से पाने आकर बढ़े और जिनका वह अभी तक भला ही चाहती है, वही आज उसके बैरी हो गए।

पाठक! आजकल जमाना बहुत बुरा है। परंतु इस संसार में सब ही कुच इत्यादि की तरह कृतघ्न नहीं होते। बहुत-से सज्जन ऐसे भी होते हैं, जो अपने मित्रों की भरसक मदद करते हैं। सच है, बड़े लोग अपनी बड़ाई को नहीं छोड़ते। नितंबों की भी इन दिनों बड़ी वृद्धि हुई थी। वे इतने समृद्धिशाली हो चले थे कि कुच इत्यादिकों को भी उनके सामने नीचा देखना पड़ता था। परंतु इन्होंने अपने इस बल का दुरुपयोग नहीं किया। इन्होंने क्षीण कटि-जैसे दीन-हीन व्यक्तियों की पहले सुनाई की और उनको अपने सर पर स्थान प्रदान किया। खुद उनको सहारा देकर उनको दुष्टों के अत्याचारों से बचाया। सच है—"बड़े बड़ाई ना तजैं।"

अनोखा अरविंद

सूर देखि फूले कमल, साझ पड़े कुमलाहि,
चाद निरेखि पिय सुरति करि, सुभग कमल खिल जाहि।

सूर्य को देखते ही कमल खिल जाते हैं और उसके अस्त होते ही सकुचा जाते हैं। सब प्राणियों को चाहिए कि इसी प्रकार अपने पोषक और मित्र के सुख और दु ख मे हर्ष तथा शोक प्रकट करे। जैसे सूर्य अपने अधीन कमलों को खुश करता है वैसे हमें भी अपने अधीनों तथा दूसरे व्यक्तियो को प्रसन्न रखना चाहिए। इससे ससार में सुख की समृद्धि होकर आनद की अतिवृद्धि होती है। देखिए, सूर्य को सुखी देखकर सरसिज फूला नही समाता, कमल का विकास देखकर भ्रमरों को हर्ष होता है, और इन सबको देखकर ससार के अखिल प्राणियों को अकथनीय आनद आता है। इसी तरह ख़ुशी ख़ुद बख़ुद उत्तरोत्तर बढती जाती है। अतएव हमे हमेशा हर्षित रहकर स्वर्गानद की प्राप्ति सहज ही में कर लेनी चाहिए। हमें सूर्य के समान ससार के किसी-न-किसी कोने पर नित्य प्रति प्रेम-प्रकाश डालते रहना चाहिए।

अब तक तो कमल दिन में ही लोगों का उपकार करते थे,

परन्तु अब अलिजी ने अपने प्रेम-प्रकाश के प्रभाव से एक ऐसा पद्म पा लिया है, जो रात को भी विकसित होकर, उन अरविंदों से कहीं प्यारा जगत् का भला करता है। यह नायिका का मानिमान और सुन्दर हृदय-कमल है, जो चाँद को देखकर और नायक की सूरत की सुरति करके खिल उठता है, और चारों ओर हर्षरूपी मधुर मकरन्द की वर्षा करके मन-मधुप को मोदित कर लेता है। पति के प्रगाढ़ प्रेमरूपी प्रखर प्रभाकर के प्रकट होकर अपनी प्रभा का प्रकाश फैलाने पर ही इस पवित्र पद्म का विकास होता है। सत्य है, प्रेम में बड़ी भारी शक्ति है।

मित्र-मिलन

पायल का झंकार सन, उपवन को चलि जाहि,

मानहु मदन मतग चढ़ि, मिलन वसतहिं जाहि।

नायिका उपवन-विहार के लिये उत्कठित हो वन को चली, तो ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों मदन महाराज एक आभूषण-सुसज्जित मतवाले हाथी पर चढ़कर अपने प्रिय सखा वसत से मिलने जा रहे हैं। यह तो स्वभाव-सिद्ध ही है कि जब किसी का कोई मित्र आने को होता है, तब वह प्रेम से प्रेरित हो उससे मिलने की उत्कठा से उसके सामने जाता है। यह तो ससार का साधारण नियम ही हुआ। प्रेम की मूर्ति महाराज मदन के लिये तो यह नियम विशेपत सिद्ध होना चाहिए। क्योंकि जिस प्रेम की प्रेरणा द्वारा वह मिलनोत्सुकता होती है, उसी प्रेम की तो मैन महोदय मूर्ति ही हैं। और फिर ये महाराज भी तो ऐसे-वैसे नहीं हैं, जो इनका मिलन किसी रक की तरह विना किसी राजसो ठाट के हो।

ज़रा इनके ठाट-बाट का भी दिग्दर्शन कर लीजिए। सम्मानित प्रिय मित्र वसत आ रहा है। उसको लिवा लाने के लिये अच्छी सुवर्ण-अबारी से सजा हाथी है, जिसकी एक बैठक

पर वे बैठे हैं और दूसरी पीठक खाली है। और यही है वसंत के लिये। मंगल समय है। अतः हाथी भी खूब सजा हुआ है। पैरों में जो पायल पड़े हुए हैं, उन्हीं की आपाय नायिका के पैजनों की रम्य ध्वनि के सदृश है। हाथी पड़ा झूम-झूमकर मतवाली चाल से चल रहा है, जो पीन जंघ युगलधारी नायिका की युवावस्था की मतवाली चाल की हूबहू नक़ल है। यह सवारी आ रही है वसंत को लिवा लाने के लिये, और यही वसंत नायिका का अभिष्ट उपवन है। इस प्रकार जाती हुई यह कामिनी गज-पीठ पर विराजमान कामदेव से कमनीयता में कुछ कम नहीं है। तभी तो कविजी ने उत्प्रेक्षा करके हमारे हृदय में आनंदोत्कर्ष उत्पादित कर दिया है। धन्य कविता-कुमुद-कलानिधि।

महामुनि मन

रह्यो चरन तल आय, रोम-रोम तिय छबि निरखि।
मनमुनि नाहिं डुलाय, लाख रिझावत आँख युग।

नील गगन में विचरण करता हुआ, आकाश-गंगा में स्नान करके और उसमें उगे हुए अनूठे-अनूठे कमलों का रसास्वादन करके, मन-मुनि ऊँची-ऊँची चोटियोंवाले पर्वतों पर उतर पड़ा। और वहीं से नीचे के मैदान की उपजाऊ उपत्यका को देखकर नीचे उतरा और हाथियों तथा सिंहों के निवासस्थान, घने वन को पार करके, पद-पद्म के नीचेवाली लाल और सुकोमल जगह पर आ टिका। फिर मालूम नहीं इतने ऊँचे से उतरने की थकावट के कारण या सिंह इत्यादि वन्य जतुओं के डर से अथवा पदतल के अनुराग के कारण, उसने ऊपर उठने का नाम तक न लिया। योगिराज की तरह दृढासन मारकर वहीं बैठ गया। आँखरूपी अप्सराओं के लाख रिझाने पर भी वहाँ से नहीं हिला, तप भंग नहीं हुआ। हमें तो यही मालूम होता है कि उस उत्तम स्थान को उपासना के उपयुक्त समझकर वहीं सिद्ध योगासन लगा लिया—समाधिस्थ हो गया।

हम तो इन मन-मुनि को सबसे श्रेष्ठ योगिराज मानते हैं।

देखिए, जिन चरणकमल को योगिराज कृष्ण तक ने अपने मस्तक पर सादर धारण किया, भला उन चरणों की उपासना करनेवाले और उन पर लुठनेवाले महामुनि मनु के महत्त्व की महिमा का हम कहाँ तक बखान कर सकते हैं। हमें तो यहाँ उन चरणों के रजकण मिल जायँ तो बस पर्याप्त है।

ललन की लाली

राधा ओढे लाल पट, लई गोद नदलाल,
नभ लाली शोभत मनहु, अस्त होत करमाल।

राधा लाल रग की साडी पहने हुए खडी हैं। वडी सुदर प्रतीत होती हैं। इतने ही में वहाँ कृष्ण महाराज आ पहुँचे। प्रिया के रूप-लावण्य को देखकर मनमोहन मुग्ध हो गए, विशेषत. लाल साडी की शोभा का निरखकर खुद प्रेम की लाली में सराबोर हो गए। प्रेम-विह्वल होकर, लपककर, प्यारी को गोद में उठा लिया। उस समय कृष्ण की गोद मे राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो सायकालीन नभ की लाली में सूर्य अस्त हो रहे हैं। कृष्ण सायकालीन नभ हैं। राधा की लाल साडी नभ की लालिमा है। साडी में से राधा का मुख अस्त होते हुए सूर्य के सदृश प्रतीत होता है। नेचर-निरीक्षकों से यह बात छिपी हुई नहीं है कि अस्त होते हुए सूर्य में चकाचौंध करनेवाली तेजी न रहकर लाली ही अधिक दिखलाई देती है। उधर कृष्ण की गोद में लज्जा के कारण, जैसा कि स्त्रियों में स्वाभाविक है, राधा का मुख लाल हो गया है। अत राधा के तत्कालीन मुख-कमल को

अस्त होते हुए सूर्य की अपेक्षा लालिमा में अनूठी है। 'प्रेम' को अनेक धन्यवाद कि जिसकी बदौलत हमें राधा-कृष्ण की ऐसी सुंदर झाँकी के दर्शन हुए हैं।

ललन की लाली

राधा ओढ़े लाल पट, लई गोद नँदलाल,
नभ लाली शोभत मनहु, अस्त होत करमाल।

राधा लाल रंग की साडी पहने हुए खडी हैं। बडी सुंदर प्रतीत होती हैं। इतने ही में वहाँ कृष्ण महाराज आ पहुँचे। प्रिया के रूप-लावण्य को देखकर मनमोहन मुग्ध हो गए, विशेषत. लाल साडी की शोभा का निरखकर खुद प्रेम की लाली में सराबोर हो गए। प्रेम-विह्वल होकर, लपककर, प्यारी को गोद में उठा लिया। उस समय कृष्ण की गोद में राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो सायकालीन नभ की लाली में सूर्य अस्त हो रहे हैं। कृष्ण सायकालीन नभ हैं। राधा की लाल साडी नभ की लालिमा है। साड़ी में से राधा का मुख अस्त होते हुए सूर्य के सदृश प्रतीत होता है। नेचर-निरीक्षकों से यह बात छिपी हुई नहीं है कि अस्त होते हुए सूर्य में चकाचौंध करनेवाली तेजी न रहकर लाली ही अधिक दिखलाई देती है। उधर कृष्ण की गोद में लज्जा के कारण, जैसा कि स्त्रियों में स्वाभाविक है, राधा का मुख लाल हो गया है। अत राधा के तत्कालीन मुख-कमल को

[illegible] है। 'नंद' [illegible] राधा-कृष्ण को [illegible] बातों के [illegible] हुए हैं।

कवि की कमान

तिया धनुप नाभी नली, जिहि कचवेणि विसाल,
त्रिवली रोम निपग सर, छुटत न याचेहु काल।

काल का यह काम था कि सबका इतकाल करे। परतु वह बेचारा तो खुद ही काल के गाल में फँसकर बेहाल हो रहा है। काल तब तक ही चौडे मैदान में आकर शिकार खेलता था, जब तक कि उसे किसी का डर न था। परतु अब तो उसे भी इस विकराल काल के पाले पडकर जान के लाले पड रहे हैं। लो, हमारी तो जान बची! जब तक यह दोनों काल लडकर न निपट लें, तब तक हमें और-और बातों से निपट जाना चाहिए। हम उसे चाहे जितनी गालवाल निकालें, चाहे पहली चालढाल बदले या न बदलें, हमें मालताल उडाने और बाल की खाल खीचने का अच्छा अवकाश मिला है। चलो, आगे की आगे देखी जायगी। फिर कौन कह सकता है, क्या हाल होगा?

सचमुच कवि ने इस दोहे में कमाल कर दिया है। इसके सामने बहुत-से कवियों की तो दाल ही न गलती [illegible] ललना का लचकीला शरीर, [illegible]
त्रिवली, पेट पर की [illegible] पद-

सब नख-सिख के हुए केली में बाणों ने कवि को मालामाल करके निहाल कर दिया है। निराले ही ढंग की कमान है। भला जब शिकारी इस कमान पर बेणीरूपी, कभी न टूटनेवाली प्रत्यंचा चढ़ाकर, रोमावलीरूपी बाणों से भरा हुआ त्रिवली-रूपी निषंग लेकर मतवाली चाल से चलेगा और चाल को देखते ही नैन शर को नाभी नली में डालकर और धनुष पर चढ़ाकर कान तक खींचकर तानेगा, और जो कहीं काल के भाल को ताक-कर तीर को छोड़ देगा तो फिर उसका बचना कठिन ही नहीं, असंभव हो जायगा। फिर बेचारे मनुष्य, जो थोड़े काल में ही कराल काल के जाल में फँसकर उसके विशाल गाल में गर्क हो जाते हैं, कहाँ जायँगे ? बस, यदि यह बान तन गया तो समझ लो इन गरीब जीवों का तो अकाल सा पड़ जायगा। रहम करे इन के हाल पर नंदलाल !

कवि की कमान

तिया धनुष नाभी नली, जिहि कचवेणि विसाल,
त्रिवली रोम निषग सर, छुटत न बाचिहै काल।

काल का यह काम था कि सबका इतकाल करे। परतु वह बेचारा तो खुद ही काल के गाल में फँसकर बेहाल हो रहा है। काल तब तक ही चौडे मैदान में आकर शिकार खेलता था, जब तक कि उसे किसी का डर न था। परतु अब तो उसे भी इस विकराल काल के पाले पडकर जान के लाले पड रहे हैं। लो, हमारी तो जान बची! जब तक यह दोनों काल लडकर न निपट लें, तब तक हमें और-और बातों से निपट जाना चाहिए। हम उसे चाहे जितनी गालवाल निकालें, चाहे पहली चालढाल बदले या न बदलें, हमें मालताल उडाने और बाल की खाल खीचने का अच्छा अवकाश मिला है। चलो, आगे की आगे देखी जायगी। फिर कौन कह सकता है, क्या हाल होगा?

सचमुच कवि ने इस दोहे में कमाल कर दिया है। इसके साम बहुत-से कवियों की तो दाल ही न गलती ... बाल लल का लचकीला शरीर, ... त्रिवली, पेट पर की ... । प

तन मन लटकते हुए केशों के बालों ने कवि को मालामाल करके निहाल कर दिया है। निराले ही ढंग की कमान है। भला जब शिकारी इस कमान पर वेणीरूपी, कभी न टूटनेवाली प्रत्यंचा चढ़ाकर, गंगाधरलाख्य बाणों से भरा हुआ त्रिवली-रूपी निषंग लेकर मतवाली चाल से चलेगा और काल को देखते ही रोम-शर को नाभी नली में डालकर और धनुष पर चढ़ाकर कान तक खींचकर तानेगा, और जो कहीं काल के भाल को ताक-कर तीर को छोड़ देगा तो फिर इसका बचना कठिन ही नहीं, असंभव हो जायगा। फिर बेचारे मनुष्य, जो थोड़े काल में ही कराल काल के जाल में फँसकर उसके विशाल गाल में गर्क हो जाते हैं, कहाँ जायँगे ? बस, यदि यह बान तन गया तो समझ लो इन गरीब जीवों का तो अकाल-सा पड़ जायगा। रहम करें इन के हाल पर नंदलाल !

ओस या आँसू

ओस बूँद जे हैं नहीं, जो इत-उत दिखलात,
आँसू गिरत गुलाब के, निरखि प्रिया को गात।

गुलाब के पुष्प पर इधर-उधर जो बूँदे पडी हुई है, वे ओस-कण नहीं हैं, किंतु नायिका विशेष के शरीर की सुदरता देख कर, डाह के कारण, उसके आँसू आ रहे हैं। वह यह देख कर बडा दुखी हो रहा है कि नायिका सौंदर्य मे उससे बढी-चढी है।

बहुत सभव हे यही बात हो, परतु कोई उस गुलाब से दरयाफ्त तो करे कि दरअसल माजरा क्या है? मुमकिन है, ये हर्ष के आँसू हों। गुलाब को अपने ही सहजातीय दूसरे गुलाब को देखकर बडी भारी खुशी हुई हो कि जिससे आँखों से प्रेमाश्रु टपकने लग गए हों। लेकिन अगर ये आँसू डाह के कारण आए हैं, तो यह गुलाब की नातजुर्बेकारी है। यह सरासर उसकी मूर्खता है। अकेले गुलाब ही ने सु दरता का ठेका थोडे ही ले रक्खा है। इस पृथ्वी पर एक-से-एक बढकर सु दर मिलते हैं। अभी बचारे गुलाब ने देखा-भाला ही क्या है। यों दूसरों की सु दरता देखकर यदि वह रोने लगेगा तो अपनी सु दरता से और हाथ धो बैठेगा। मान जाओ, मियाँ गुलाब!

यह रोना-धोना क्या सीखे हो ? हवा के साथ खूब अठखेलियाँ करो और मज़े उड़ाओ। थोड़ा-सा हमारा भी स्वार्थ है, इसलिये कहते हैं, वरना हमें क्या मतलब है। जैसा चाहो वैसा करो। बस, केवल इतना ध्यान रखना कि रोते-रोते आँसुओं के साथ अपनी सुगंध को न बहा देना, वरना दूसरे घरों में आग लग जायगी। तुम्हारी सुगंध के प्रेमियों के लिये मामला नाज़ुक हो जायगा।

मयंक का मोह

गत केलि किय आय इक, सरिता जल महँ नार,
भयो मुग्ध छवि निरखि शशि, खोजत रूप अपार।

क्या आपने कभी शुक्लपक्ष की रात्रि को किसी सरिता के तट पर खड़े रहकर देखा है कि कोई चमकीली वस्तु तीव्र गति से इधर-उधर दौड़ रही है? और देखकर भी कभी सोचा कि यह है क्या? अगर नहीं, तो सुनिए। ये चंद्र महोदय हैं। प्रेम के मारे हैरान हुए इधर-उधर बावले से फिर रहे हैं। इन्होंने इसी सरित-जल में अपनी एक प्रिय वस्तु खो दी है। उसी की तलाश में ये दौड़ रहे हैं। बात यह है कि एक रात्रि को एक चंद्रमुखी नायिका सखियों सहित इस सरिता में जल-क्रीडा करने आई थी। चंद्रदेव की इसकी सौंदर्य-शोभा पर आँख लग गई। वे इसकी छटा पर दिलोजान से फिदा हो गए। उस समय तो अपनी प्राण-प्रतिमा को देखकर मन-ही-मन उस स्वर्गानंद को लूटने लगे, जिसको विरले सौभाग्य-शाली पुरुष ही पाते हैं। वे इसकी अठखेलियाँ देखकर पागल हो, निस्तब्ध भाव से, अनिमेष नेत्र इसकी छवि को निरखने लगे।

इधर समय पूरा हुआ जान, नायिका जल के बाहर निकली और सखियों सहित अपने स्थान को चल पड़ी। चंद्र[illegible]ागर का दिल उधर पर चली गई। यहाँ ये महाशय कभी रूप छटा के ध्यान में मग्न थे। इनकी दुःख की घड़ी अभी शुरू नहीं हुई थी। इनको तो यह भी खबर नहीं थी कि जिसकी मूर्ति में ये लीन हैं और जिसकी प्रतिमा मन में रखकर ये मन के मोदक खा रहे हैं, वह तो कभी की यहाँ से चल दी। आखिर इनकी मोह-निद्रा जाग गई। अब तो इन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। कहाँ जायँ, किधर जायँ, प्रिया को कहाँ ढूँढ़ें? ध्यान में ऐसे चूर थे कि जाते वक्त उसकी राह भी नहीं देखी। इनको तो इतना ही स्मरण था कि वह जल में केलि कर रही थी। बस, अब क्या था, लगे बिजली की गति से इधर-उधर जल में दौड़ने। सब सरिता छान डाली, पर वह न मिली। क्या किया जाय? बेचारे चंद्र की इस दयनीय दशा पर दया हो आती है। अगर किसी ने नायिका को जाते देखा हो, तो बतावें, जिससे इस सुधांशु की प्रेमतृषा बुझे। देखो, ये इस शीघ्र गति से इधर-उधर भागते हैं कि यह पहचानना कठिन है कि एकरूप होने पर भी अपनी द्रुतगति से अनेक-रूप लक्षित होते हैं, या वास्तव में ये अनेक रूप धारण किए हुए खोज कर रहे

हैं, जिससे खोज में सुवीता हो और समय थोड़ा लगे ? यह सोचना भी अयथार्थ नहीं है, क्योंकि चद्र तो मायावी हैं ही, वे जब चाहें तब लाखों रूप धर लें। पर, "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहु।" इनको राह कौन बतावे, नायिका को उस समय जाते तो किसी ने न देखा होगा। यदि ऐसा ही है, तो ये अपनी धुन में मर मिटेंगे। इनको इस मतव्य से कौन हटा सकता है। इनकी दुखी दशा पर हमें भी सहानु-भूति प्रकट करनी चाहिए।

छवि की छदाम

विधि के हाथ सकल छवि, सोलह आने दाम।
लिखी प्रिया सह आन सब, जग कह एक छदाम।

विधि के हाथ में पूरी सोलह आना सुंदरता थी। उसमें से उन्होंने सारे संसार को एक छदाम सौंदर्य लेकर बाक़ी सब छवि प्रियाजी को दे डाली। फिर भला प्रियाजी की सुंदरता के सब क्यों न गीत गावें। जग के हिस्से में केवल एक छदाम छवि आने पर भी रूपमूरती के वे नायाब नमूने नज़र आते हैं कि जिनकी कोई तारीफ़ नहीं की जा सकती। फिर भला जहाँ एक छदाम कम सोलह आना रूप है वहाँ की शोभा का तो क्या कहना है। तभी तो कृष्ण सदृश योगीश्वर प्रियाजी के चरणों में शीश धरते थे। इसी रूप के बल पर तो प्रियाजी ऐसा मान किया करती थीं कि मनमोहन के लाख मनाने पर भी नहीं मानती थीं क्यों मानतीं, जब वे यह जानती थीं कि अंत में मोर मुकुट उनके चरणों में लुठेगा। सच है—"है प्रभाव सौंदर्य को सब पै एक समान।"

प्रियाजी में सौंदर्य इतनी प्रचुरता से पाया जाता है, यह सुनकर कदाचित् हमारे नई रोशनीवाले भाइयों के दिलों

मे भी प्रियाजी को सौंदर्योपासना की गरज से देखने की इच्छा हुई हो। मगर ये बेचारे सौंदर्य को क्या परखेंगे। इनकी आँखों में तो 'वीनस डी, मायलो', 'हैलन' और 'मेरी कीन आव स्काट्स' की सु दरता समाई हुई है।

अर्दीय औषधि

[illegible]

[illegible]

पाठको! आपने बड़े-बड़े कौतुकागार देखे होंगे, उनकी सैर की होगी, परंतु क्या आपने कभी विधि के इस संसार रूपी अद्भुत वृहत् कौतुकागार की विचित्रताएँ देखीं? अगर नहीं, तो आइए, कविजी ने कृपा कर इस कौतुकागार की एक विचित्र वस्तु दिखलाने का यत्न किया है। समस्त कौतुकागार का तो देखना कठिन काम है, परंतु लीजिए, आज तो इस 'म्यूजियम' की एक ही चीज देख लीजिए। उसकी विशेषता पर विचार कीजिए और तब अनुमान कर लीजिए कि इसी प्रकार की अपरिमित वस्तुओं की आगार, यह कौतुकशाला क्या ही कारीगरी का नमूना होगी।

सुनिए, आपने संसार में बड़े-बड़े वैद्य, डॉक्टर, हकीम, देखे-सुने होंगे, भिषग्वरों से भेंट की होगी, 'एलोपेथिस्टों' और 'होमियोपेथिस्टों' का नाम सुना होगा। इनका कार्य देखकर यह भी जाना होगा कि ये अपने अपने अनुभव के अनुसार

ओषधियाँ देकर बीमारों का मर्ज दूर करने की कोशिश करते हैं। परन्तु क्या, आपको याद भी पड़ता है कि, कहीं आपने कोई ऐसा वैद्यराज देखा है, जो क्षति पहुँचानेवाला भी हो और फिर ओषधि-प्रयोग द्वारा अच्छा करनेवाला भी हो। हमें निश्चय है कि आपने ऐसी वस्तु सजीव और निर्जीव सृष्टि मे कहीं न देखी होगी, जिसमें मारण और तारण के विरुद्ध गुण एक साथ हों। अच्छा तो ध्यान देकर सुनिए, आपकी इस उत्कंठा को कविजी पूरा करते हैं। वे कहते हैं कि अब इन डॉक्टरों का पेशा नष्ट हुआ समझो, क्योंकि सब काम विशेषतापूर्वक एक ही दवा से निकल जायँगे। यह दवा स्त्री के सुमुख रूपी शीशी मे रक्खी हुई है। इसका अजीब गुण यह है कि नयनबाणों द्वारा घायल कर यह इधर मारण का कार्य करती है, तो उधर तुरत ही अधरसुधा-पान रूपी मरहम को उस घाव पर लगाकर बचाने का कार्य करती है। अच्छा हुआ, जिस विधि ने इस प्रकार का रोग बनाया, उसी ने साथ ही साथ, मनुष्यों पर दया कर, अच्छी और अचूक ओषधि भी बता दी। यही नहीं, उन्होंने दवा को इतना सुलभ कर दिया कि बिना प्रयास ही, पास ही मिल जाती है। जिससे कि रोगी को बहुत काल तक दुःख नहीं ।न। पड़ता। ऐसा न होता, तो भला नयनबाणों से घायल

देकर कोई किसी प्रकार बच सकता था ? विधि की इस दूरदर्शिता और परोपकार की हम कहाँ तक प्रशंसा करें।

आत्म-आसक्ति

देख मुकुर में रूप निज, मोहित ह्वै गइ बाम,
डस ला अपने आपको, सापिन ने हा राम!

नायिका दर्पण में अपना मुख देखकर अपने ही सौंदर्य पर आप ही आसक्त हो गई। शोक! महाशोक!! नागिन ने अपने ही को डस लिया!

मालूम होता है कविजी प्रेम-साम्राज्य के सौंदर्य का जिक्र कर रहे हैं। वहाँ मुमकिन है कि ऐसे वाके हो जाते हों कि खुद अपनी खूबसूरती पर आप लट्टू हो जायँ। यहाँ तो इतने ऊँचे दर्जे की खूबसूरती शायद ही कही नजर पडे। यह तो रूप क्या कोई बला समझिए! वरना ऐसे-वैसे रूप को देखकर भला कोई आप ही पर क्या फिदा होगा! या सभव है—'मिला प्रिया को शेप सब, जग को एक छदाम'-वाली ये प्रियाजी ही हों। इनके अतिरिक्त हमें कोई और नजर नहीं पडतीं कि जिनमें इतना सौंदर्य हो। या सभव है कि नायिका दर्पण में अपना मुख देखती हुई अपने कपोल पर पडी हुई लट को देखकर, उसे सचमुच नागिन समझकर ऐसी डर गई, मानो उसे नागिन ने डस लिया है। या सभव है कि नायिका अपनी लट

का काम तो किया हो गई हो। यह बात सम्भव है, क्योंकि यह सर्परूपी नागिन बड़ी बुरी होती है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इसने इसके आपको डस लिया हो। यह अवश्य कोई खास नागिन होगी। मामूली नागिन का तो यह काम नहीं है। जो नारियाँ इस प्रकार सर्परूपी नागिनें पालती हैं, उनको चाहिए कि इनको अपनी निगरानी में रक्खें, क्योंकि ये बड़ी खतरनाक हैं। खुद अपने आपको डस लेती हैं। फिर भला गैर तो इनसे बच ही क्या सकता है ?

प्रेम का प्रतिबिंब

रतन जरे पट नील में, शोभति है इमि नार,
मनहु गग प्रतिबिंब नभ, शशि तारन को चार।

ताराओं से जडी हुई नीले रग की साडी में नायिका इस प्रकार शोभा देती है, जैसे गगा के निर्मल जल मे प्रतिबिंबित होकर नभ, चद्र और तारे शोभा देते हैं।

वास्तव में दृश्य दर्शनीय है। गगा के निर्मल जल में नीले नभ का प्रतिबिंब पडने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह नीले रग की साडी है। ताराओं का जो प्रतिबिंब पडता है, वही मानो उस साडी के तारे हैं। चद्रमा का प्रतिबिंब ऐसा प्रतीत होता है मानो नायिका का मुख है। नभ के नीले प्रतिबिंब मे से गगा का निर्मल श्वेत जल जो चमकता है, वही मानो उस नायिका की नीली साडी में से चमकता हुआ गोरा गात है। कविजी की प्रतिभा सचमुच प्रशसनीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपने प्रकृति का पूरा-पूरा पाठ पढा है। तभी तो इन्हे प्रत्येक बात में प्रकृति के सौंदर्य के पुनीत दर्शन होते हैं।

मान मोचन

[illegible]

[illegible]

सुनते हैं गुरु बिना ज्ञान नहीं आता। इसी बात को शास्त्रों ने भी पुकार-पुकारकर कहा है। जहाँ कहीं आप किसी पंडित को देखें, तो पूछने पर पता लगेगा कि उनके कोई-न-कोई आदरणीय गुरुजी अवश्य रहे हैं। परंतु इसके विपरीत, महाकवि प्रेम के प्रेम-साम्राज्य में विद्या बिना गुरु के ही अच्छी तरह आ जाती है। आप पूछेंगे कि यह तो बड़ा आश्चर्य है, भला, विद्या भी कहीं बिना गुरु के आ सकती है? आप एकलव्य का दृष्टांत देकर प्रमाण भी देंगे। परंतु क्या हो, आपके ये सब प्रमाण यहाँ किसी काम के नहीं हैं।

अब सुनिए, नीति, चालबाजी और चतुराई ये ऐसे विषय हैं कि प्रेम-साम्राज्य में बिना सिखाए ही आ जाते हैं। लेकिन इन्हीं विषयों को सीखने के लिये आजकल बड़े-बड़े गुरुओं के पैरों पर शीश झुकाना पड़ता है। इन्हीं की प्राप्ति के लिये देश देशांतर घूमना पड़ता है। इस विद्या को आजकल लोग डिप्लोमेसी के नाम से पुकारते हैं, और इसका

अध्ययन बडी धूमधाम के साथ इँगलैंड की एक-से एक अच्छी कई जगहों में होता है। तब कही जाकर यह विद्या दिमाग पर दखल कर पाती है। परतु इतना करने पर भी एक बडे-से-बडा डिप्लोमेट प्रेम की चाल देखकर चकराने लगता है।

देखिए इसी प्रकार की एक चाल का यहाँ भी उल्लेख है। राधिकाजी ने कृष्णजी से, प्रेम-कलह कर, मान ठान लिया है। वे प्रिय की सेज पर, तन छीन मन मलीन, मुख का रुख बदले पडी हैं। कृष्णजी से प्रिया का यह मान सहन नही हो सकता। परतु वे उन्हे समझावे भी तो किस मुख से। वे ही तो इनके कोप के कारण थे। अत एक चाल ऐसी चली जिससे मामला इधर-का-उधर हो गया। इस चाल को तो सुनकर ही बडे-बडे शिक्षित नीति-कुशल मनुष्य सर खुजलाने लगेंगे। किया यह कि मुख फेरी हुई राधिकाजी की पीठ पर पड़ी वेणी को देख, साँपिन की सुधि कर, वे एकदम बोल उठे—"नागिन री प्रिय! पीठ पै।" अब क्या था। भला ऐसा कहने पर स्वभाव-भीरु कोमल-हृदया राधाजी किस प्रकार चुप रहतीं? वे तो मारे डर के लगी काँपने, और एकदम बिना सोचे-समझे मान की आन को न मानकर शीघ्रता से मुख फेर कृष्णजी के अक की शरण ली। मान सब छूट गया। पूर्व के प्रेम की ज्योति

ना के मन से सारा संसार और उनका अग-
ना की। पाठक, देखा, इसे कहते हैं पहुँचाई, इसे ही
कहते हैं मनुष्य की आत्म-समर्पणता। यही है उच्चकोटि की
योगियों का आचरण था। अब सोचिए, भगवान कृष्ण ने यह
[illegible] कहाँ सीखी थी, जो इतने ऊँचे निपुण निकले? नहीं।
वे सिर्फ अन्तरात्मा शुद्धि प्रेम था, जिसकी बदौलत यह
अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

अध्ययन बडी धूमधाम के साथ इँगलैंड की एक-से एक अच्छी कई जगहो में होता है। तब कही जाकर यह विद्या दिमाग पर दखल कर पाती है। परतु इतना करने पर भी एक बडे-से-बडा डिप्लोमेट प्रेम की चाल देखकर चकराने लगता है।

देखिए इसी प्रकार की एक चाल का यहाँ भी उल्लेख है। राधिकाजी ने कृष्णजी से, प्रेम-कलह कर, मान ठान लिया है। वे प्रिय की सेज पर, तन छीन मन मलीन, मुख का रुख बदले पडी हैं। कृष्णजी से प्रिया का यह मान सहन नही हो सकता। परतु वे उन्हे समझावे भी तो किस मुख से। वे ही तो इनके कोप के कारण थे। अत एक चाल ऐसी चली जिससे मामला इधर-का-उधर हो गया। इस चाल को तो सुनकर ही बडे-बडे शिक्षित नीति-कुशल मनुष्य सर खुजलाने लगेगे। किया यह कि मुख फेरी हुई राधिकाजी की पीठ पर पडी बेणी को देख, साँपिन की सुधि कर, वे एकदम बोल उठे—"नागिन री प्रिय! पीठ पै।" अब क्या था। भला ऐसा कहने पर स्वभाव-भीरु कोमल-हृदया राधाजी किस प्रकार चुप रहतीं? वे तो मारे डर के लगी काँपने, और एकदम बिना सोचे-समझे मान की आन को न मानकर शीघ्रता से मुख फेर कृष्णजी के अक की शरण ली। मान सब छूट गया। पूर्व के प्रेम की ज्योति

मन के संकट से मार गोरख और उदास जग-
ना रही। पाठक, देखा, इसे कहते हैं चतुराई। इसे ही
कहते हैं कौशल था। कार्य-कुशलता। कहते हैं उपरांटि की
विजय में या मानवार्थी। अब सोचिए, क्या कृष्ण ने यह
किया कहां सीखी थी, जो इसमें ऐसे निपुण निकले? नहीं।
भगवान धन्यवाद दीजिए प्रेम था, जिसकी बदौलत यह
अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

अध्ययन बडी धूमधाम के साथ इँगलैंड की एक-से एक अच्छ
कई जगहों में होता है । तब कहीं जाकर यह विद्या दिमाग़
पर दख़ल कर पाती है । परन्तु इतना करने पर भी एक
बडे-से-बडा डिप्लोमेट प्रेम की चाल देखकर चकराने लगता है ।

देखिए इसी प्रकार की एक चाल का यहाँ भी उल्लेख है । राधिकाजी ने कृष्णजी से, प्रेम-कलह कर, मान ठान लिया है । वे प्रिय की सेज पर, तन छीन मन मलीन, मुख का रुख बदले पडी हैं । कृष्णजी से प्रिया का यह मान सहन नहीं हो सकता । परन्तु वे उन्हे समझावे भी तो किस मुख से । वे ही तो इनके कोप के कारण थे । अत एक चाल ऐसी चली जिससे मामला इधर-का-उधर हो गया । इस चाल को तो सुनकर ही बडे-बडे शिक्षित नीति-कुशल मनुष्य सर खुजलाने लगेंगे । किया यह कि मुख फेरी हुई राधिकाजी की पीठ पर पड़ी बेणी को देख, साँपिन की सुधि कर, वे एकदम बोल उठे—"नागिन री प्रिय ! पीठ पै ।" अब क्या था । भला ऐसा कहने पर स्वभाव-भीरु कोमल-हृदया राधाजी किस प्रकार चुप रहतीं ? वे तो मारे डर के लगीं काँपने, और एकदम बिना सोचे-समझे मान की आन को न मानकर शीघ्रता से मुख फेर कृष्णजी के अक की शरण ली । मान सब छूट गया । पूर्व के प्रेम की ज्योति

जिस तरह तू मांस खाके मुझे दुःख देती है, इसी तरह जो जीवों को, जो तुम्हारे जिह्वा के कारण मारे ही से दुःखी होते हैं, मांस खाने लगता है। इसीलिये अब अपने कर्मों का फल भोगता है। मांस खाना महापाप है। और अपराधों को चाहे परमात्मा क्षमा कर दे, परन्तु सुनते हैं कि मांस जैसे घोर पाप को वह कभी क्षमा नहीं करता। अतः आज से तू भी भविष्य में मांस न खाने का प्रण कर ले।"

"सुन, नायक महाराज! जो कुछ कहना है, दिल खोलकर कह लीजिए। फिर ऐसा मौका नहीं मिलेगा। संभव है, तुम्हारा उपदेश का असर हो जाय। तुमने लेक्चर तो खूब ही फटकारा है, मतलब की सब बातें कह डाली हैं। अगर फिर भी नाकामयाबी हुई, तो तकदीर की बात। किंतु ऐसी हालत में तुम मांस को एक निराला ही आनंद समझ लेना।

कलानाथ का कलंक

केहि कारण पिय ! चंद हिय, श्याम दिखाई देत ,
तो समान यह मान करि, विरहिन को दुख देत ।

गगन मे चद्रदेव ताराओं के साथ विहार कर रहे हैं । नायिका अपने पति-देव के साथ प्रकृति का निरीक्षण कर रही है । चाँदनी छिटक रही है, मानो रजत का बिछौना बिछा दिया है । नायिका चद्र की छवि देखकर बडी प्रसन्न हो रही है । शशि की शोभा को सराहते हुए उसने नायक से पूछा—"हे प्राणनाथ ! चद्र का हृदय श्याम किस कारण से दिखलाई देता है ?" नायक बडा चतुर था । उसने समझा कि आज यह अच्छा अवसर हाथ लगा है । बेचारे को नायिका मान करके बहुत तग किया करती थी । अत. वह, मान की बान छुडाने की जी में ठानकर शान से इस प्रकार, अपनी जान से बोला—"हे प्यारी ! यह तेरे ही समान मान करके विरही जनों को बहुत दुःख देता है । उसी का यह फल है कि उसका हृदय काला हो गया । मान करने से बडा नुकसान होता है । इस मान के ही कारण चद्र की सुदरता में कैसा धब्बा लगा है । इसका सारा सौंदर्य धूल में मिल गया है ।

कितनी कितनी हानियाँ पैदा की हैं। इन्ही के कारण तो बेचारा सौंदर्य-जगत् का सिरताज सुधांशु वक्र-रूप हो गया है। जब इसने भी तुम्हारी तरह मान किया, तो यह दशा हुई। मान बहुत बुरी चीज है। तात्पर्य यह है कि ऐसा कहकर नायकजी ने यह ध्वनित किया कि मान से जिस प्रकार चंद्र टेढ़े हो गए, उसी प्रकार तू भी विरूपांगी न हो जाय। यह कहकर तो नायकजी ने आजीवनस्थायी भय का वह अंकुर नायिका की हृदयस्थली में जमा दिया, जो अवश्य फलीभूत होता। उनकी नीति निपुणता का यह नायाब नमूना है। दंड अर्थात् धमकी और सजा के सहारे राजा न्याय करता है, परंतु उसका न्याय कभी-कभी बिलकुल निष्फल होता है। पर यहाँ तो धमकी का फल आजीवनस्थायी और उद्देश्य-साधक हो गया है। एक ही बार की मृदु धमकी ने । कि भविष्य में अनेक सुख में विघ्न डालनेवाले गया। हे नायकजी, नीति इसी को

कितनी-कितनी हानियाँ पैदा की हैं। इसी के कारण तो बेचारा सौंदर्य-गगन का सिरताज सुधांशु वक्र-रूप हो गया है। जब इसने भी तुम्हारी तरह मान किया, तो यह दशा हुई। मान बहुत बुरी चीज़ है। तात्पर्य यह है कि ऐसा कहकर नायकजी ने यह ध्वनित किया कि मान से जिस प्रकार चंद्र टेढ़े हो गए, उसी प्रकार तू भी बिगड़ी-सी न हो जाय। यह कहकर तो नायकजी ने आजीवनस्थायी भय का यह अंकुर नायिका को हृदयस्थली में जमा दिया, जो अवश्य फलीभूत होवा। इनकी नीति निपुणता का यह नायाब नमूना है। दंड अर्थात् धमकी और सजा के सहारे राजा न्याय करता है, परंतु उसका न्याय कभी-कभी बिलकुल निष्फल होता है। पर यहाँ तो धमकी का फल आजीवनस्थायी और उद्देश्य-साधक हो गया है। एक ही बार की मृदु धमकी ने वह काम किया कि भविष्य में अनेक सुख में विघ्न डालनेवाले कार्यों का कारण मिट गया। वाह नायकजी, नीति इसी को कहते हैं।

वाम विधु

अब तो मानहिं तजरि प्रिय, देग याहि के काम ;
याके कारण ह्वै गयो, चद बापुरो वाम ।

सुनते हैं राजनीति चार प्रकार की होती है—साम, दाम, दड और भेद । इन्हीं के बल पर राजा अपने राज्य की परिस्थिति ठीक रख सकता है । परतु क्या आप समझते हैं, यह नीति ससार के राजाओं में ही होती है , क्या उन्होंने ही इसका ठेका ले रक्खा है ? अगर आपका ऐसा खयाल है, तो आप गलती पर हैं । आपको अभी प्रेम-साम्राज्य का पता नही है । वहाँ ता इस नोति का प्रत्येक प्रेमी पूरा ज्ञाता होता है । वहाँ पर यह प्रचुर परिमाण में प्रयोग मे आती है । यही नहीं, वहाँ यह नीति सदा सफल ही होती है । राजाओं के हाथ मे पडी हुई यह कभी-कभी विफलप्रयत्न भी हो जाती है । इसी नीति के उदाहरण-स्वरूप, ऊपर के दोहे से आपको मालूम होगा कि प्रेम में नीति का क्या स्थान है, और उसमे तथा और-और प्रकार की नीति मे क्या अतर है ।

मानगर्विता नायिका को प्रियतम ने कहा कि हे प्यारी, अब इस वृथा मान को छोड दे , देखती नही, इस मान ने

उसका यह मनोरथ सफल न हुआ । कुछ समय के बाद रसीन नायकजी मुसकिराते हुए दूर से इस ओर आते नजर आए । इधर नायिका भी इस समय तक रोषाग्नि से खूब संतप्त हो चुकी थी । परंतु देखिए, इन दोनों की चार आँखें होते ही सब दृश्य एकदम बदल जाता है, जैसे किसी चतुर मांत्रिक के मंत्र-कौशल से बिच्छू के काटने से तड़पते हुए की व्यथा एक-दम मिट जाती है । जिस मान और रोष के बल पर यह नायक को बुरा-भला कहने का संकल्प कर चुकी थी, उसी मान और रोष को उसने इस प्रकार दिल से दूर कर दिया, जिस प्रकार मनुष्य किसी घृणित वस्तु का तिरस्कार सहज ही में कर देता है । जिस प्रकार लाख बहुत जल्दी ही आग के संसर्ग से गल जाती है, उसी प्रकार प्रिय के समागम से उसका भी मान तुरत गल गया । देखिए, कुछ-का कुछ हो गया । या तो अग्नि की तरह कोपाग्नि से प्रज्व-लित सी हो रही थी, या दूसरे ही क्षण में नायक से मिलकर इस प्रकार शांत हुई, मानो उस पर जल-वृष्टि हो गई हो । सचमुच प्रेम की लीला निराली ही है । इसने तो बहुत सी माननियों के मान इसी प्रकार गला डाले ।

अगर प्रेम पृथ्वी पर न होता, तो यह समस्त संसार ——

मान-मर्दन

पिय अजहूँ आए नहीं, देहौं लाखों गारि,
पिय आवत ही मान को, दियो लाख जिमि गारि।

नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा में बैठी है। समय बहुत ज्यादा हो गया है, परन्तु नायकजी अभी नहीं पधारे हैं। बेचारी के हृदय में रह-रहकर अनेक ख़याल उठते हैं और तुरत ही शांत हो जाते हैं। उनके न आने का कारण सोचती है, परन्तु कुछ पता नहीं लगता।

आज तक तो उसका यह विचार था कि मेरे प्रेम में वह आकर्षण-शक्ति है, जो उन्हें जब चाहे मेरी ओर खींच ला सकती है, परन्तु आज इसके विपरीत होते देख, उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। सोचते-सोचते वह झल्ला उठी और लगी नायक पर कोप करने। सोचा कि आज आते ही उनको ऐसा आड़े हाथों लूँगी कि फिर इस प्रकार की गफलत कभी न करेंगे। फिर तो मुझे प्रतीक्षा करने का कोई मौका ही न आयगा। उसने तो सोचा था कि केवल आज के भला-बुरा कहने और ऊँचा-नीचा लेने से सदा का झंझट और प्रतिदिन की प्रतीक्षा मिट जायगी। परन्तु हुआ क्या, सो सुनिए।

उसका यह मनोरथ सफल न हुआ। कुछ समय के बाद उन्होंने नायकजी गुनगुनाते हुए दूर से इस ओर आते नज़र आए। इधर नायिका भी इस समय तक रोषाग्नि से खूब संतप्त हो चुकी थी। परंतु देखिए, इन दोनों की चार आँखें होते ही सब दृश्य ऐसे बदल जाता है, जैसे किसी चतुर मांत्रिक के मंत्र-प्रयोग से बिच्छू के काटे से तड़पते हुए की व्यथा एक-दम मिट जाती है। जिस मान और रोष के बल पर यह नायक को बुरा भला कहने का संकल्प कर चुकी थी, उसी मान और रोष को उसने इस प्रकार दिल से दूर कर दिया, जिस प्रकार मनुष्य किसी घृणित वस्तु का तिरस्कार सहज ही में कर देता है। जिस प्रकार लाख बहुत जल्दी ही आग के संसर्ग से गल जाती है, उसी प्रकार प्रिय के समागम से उसका भी मान तुरत गल गया। देखिए, कुछ-का कुछ हो गया। या तो अग्नि की तरह कोपाग्नि से प्रज्व-लित सी हो रही थी, या दूसरे ही क्षण में नायक से मिलकर इस प्रकार शांत हुई, मानो उस पर जल-वृष्टि हो गई हो। सचमुच प्रेम की लीला निराली ही है। इसने तो बहुत सी मानिनियों के मान इसी प्रकार गला डाले।

"अगर प्रेम पृथ्वी पर न होता, तो यह समस्त संसार कल-

पूर्ण होता। शांति, स्नेह और सौंदर्योपासना का स्वप्न भी न आता। धन्य है प्रेम! तेरी शक्ति महान् है। तभी तो कविजी ने कहा है कि प्रेम ही परमेश्वर है।

ग्वालिनों की दुष्टता

मान [illegible] जो प्राण प्रिय, [illegible] पाहि।

[illegible] प्रेम को [illegible]।

प्रेम में मानलीला को देख-देखकर बहुत-से रसिकों के हृदय में खयाल उपजता है कि इसमें रंग में भंग पड़ता है, यह तो प्रेम का मजा मिट्टी में मिला देता है, और इस कलह से प्रेमियों के हृदय अत्यंत दुःखित होते हैं। परंतु उनका यह विचार अक्षरशः सत्य नहीं है। भली प्रकार विचारने से यह सिद्धांत निर्मूल और भ्रामक सिद्ध होगा।

देखिए, संसार में गुणों के साथ-ही-साथ अवगुण भी न हों, तो गुणों का पूरा विकास नहीं हो सकता। अवगुणों के अवरोध से ही गुणों की शोभा बढ़ती है। अगर संसार केवल सुखमय ही होता और उसमें दुःख का नाम तक न होता, तो यह दृश्य भी आँखों को न रुचता, क्योंकि मनुष्य का यह स्वभाव है कि एक-ही एक स्थिति में पड़े पड़े उसको जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है, और उसका जीने का मजा चला जाता है। वह तो जीवन का उद्देश्य ही भूल जाता है। यहाँ तक कि प्रकृति भी विभिन्नता का ही प्रथम पाठ पढ़ाती है।

में झलकता नजर आता है। जिस प्रकार प्रेमी दंपति की दूतियाँ एक दूसरी की चुगली करने में और गूढ रहस्य बताने में प्रवीण होती हैं, उसी प्रकार इन आँखों ने भी दूतियों का कार्य किया। नायिका के हृदयस्थ प्रेमभाव को नायकजी से कह सुनाया। नायक रहस्य समझ गए। वे तो विरह-वेदना से इतने व्यथित हो चुके थे कि अपनी भूल स्वीकार कर नायिका से कविवर जयदेव के शब्दों में—"स्मरगरलखण्डन मम शिरसिमण्डन, देहि पदपल्लवमुदारम्" प्रार्थना कर हार मानने ही वाले थे कि इसी समय उनकी लाज नायिका की नेत्ररूपी दूतियों ने रख ली। नायिका पूर्ण विजय प्राप्त करने ही को थी कि उसकी विश्वासघातिनी दो सेना-ध्यक्षिणियाँ विपक्षी से जा मिलीं। फिर तो उसका हाल वही हुआ, जो ब्लूचर के विपक्षियों से मिलने पर नेपोलियन का वाटर्लू के मैदान में हुआ था। नायकजी ने आर्द्र होते हुए हृदय को कड़ा कर लिया। अंत में परिणाम यह हुआ कि नायिका को अपना मान छोड़कर नायक के सामने हार माननी पड़ी। दोनों में प्रेम-संधि हुई। हरजाने के रूप में नायिका को चुंबन देना पड़ा। नायक की खूब चेती। उनका भाग्य अच्छा था, जो इस प्रकार अनपेक्षित सफलता प्राप्त हुई।

अचानक आगमन

न्हान भजी जब श्याम, आनि गये पिय हू तहाँ।
प्रकट भयानक कीन्ह, श्याम मूँदि लज्जा भरी।

चित्र स्वाभाविकता का नमूना है। ईश्वर ने प्रेमियों के आश्चर्य-जनक व्यापार बनाए हैं। जिसको सब संसार बुरा समझे, उसी कार्य में उनको अनोखा आनंद मिलता है। इनके तो रंग-ढंग ही निराले हैं। देखिए, इसी निरालेपन का नमूना उपरोक्त सोरठे में भी दरसाया गया है। यह स्पष्ट दिखाया गया है कि किस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका को लज्जित करने में ही आनंद पाते हैं। वे तो ऐसे शुभ अवसरों की खोज में लगे रहते हैं कि कहीं प्रियाजी को असाधारण दशा में पा जायँ, तो उनको लज्जित कर, उनकी उस समय की दशा से आनंदलाभ करें। अनोखा व्यापार है। क्या कहीं किसी के दुःख से भी सुख हो सकता है? परंतु पाठक, प्रेम-साम्राज्य में कोई बात अनोखी नहीं है। वहाँ तो ऐसे-ऐसे लाखों वृत्त देखने को मिलेंगे। वहाँ की तो माया ही और है। बेचारे संसारी जीव उसका रहस्य क्या समझें।

सुनिए, प्रेम के ठेकेदार रसीले श्रीमुरलीधर भी बहुत दिन से अवसर ताक रहे थे कि राधिकाजी के साथ भी इसी प्रकार मन-

पुत्र-प्रेम

सुतमुख देख्यो चाहि तिय, प्रकट सु आशय कीन्ह ,

कत कह्यो रहु बावरी, औरे हित वय दीन्ह ।

स्त्रियों का हृदय बडा कोमल, भोला-भाला और शुद्ध होता है। वह उस दर्पण के सदृश प्रतिबिंबग्राही होता है, जिसमें जो प्रतिमा उसके सामने आ जाती है, उसी का हूबहू वैसा-का-वैसा चित्र वहाँ खिंच जाता है । हमारी नायिका भी एक दिन पुत्रवती स्त्रियों के साथ बैठी-बैठी सोचने लगी—"मेरे भी पुत्र हो जाता, तो मैं भी इन बहनों की तरह सौभाग्यवती हो जाती ।" सोचते-सोचते अपनी पुत्रहीनता के कारण वह अपने भाग्य को कोसने लगी । बाद में अपने हृदय की इस बात को नायकजी के सामने प्रकट की । नायकजी ने समझ लिया कि हो-न-हो इसकी यह आत्मग्लानि और स्त्रियों को पुत्रवती देखकर पैदा हुई है । इसने तो बालहठ की तरह इस हठ को धार लिया है । अगर अपने सुख-दु ख, भले-बुरे का विचार करती, तो कदापि ऐसा हठ न ठानती । अभी तो इसकी अवस्था ही ऐसी है कि इस प्रकार की अभिलाषा करना, सब सुखों को लात मारना है । निदान इन्होंने उसे समझाने की ठानी, और ऊँचा-

नीचा लेकर कहा कि ए बावरी ! तूने बिना सोचे-समझे इस इच्छा को हृदय में स्थान दिया है। अगर जरा भी सोचती, तो तुझे यह मालूम हो जाता कि यह नवयव, पुत्रोत्पत्ति के लिये उपयुक्त समय नहीं है। यह तो सुख भोगने का सुअवसर है।

यह तो हुआ उनका उपदेश नायिका को। परंतु पाठक ! जरा सोचिए, तो आपको मालूम होगा कि इस उपदेश में परोपकार की अपेक्षा स्वार्थसिद्धि का अंश ज्यादा है। क्योंकि ज्यों ही नायिका ने गर्भ धारण किया, त्यों ही बेचारे नायकजी को प्रिया-मिलन की सुख की घड़ी का कुछ समय के लिये अंत हुआ समझो। दूसरे, पुत्र के पैदा होने पर तो नायिका का जो प्रेम पहले केवल नायक पर ही रहता था, वह अब पुत्र की ओर बँट जायगा। यह तो नायकजी ही का काम था कि एक समझदार परिणामदर्शी पुरुष की तरह—"एक पंथ दो काज"वाली युक्ति सोच निकाली। उधर नायिका की इच्छा का समाधान किया, तो इधर स्वार्थसाधन में भी कुछ कमी न रक्खी।

दर्द की दवा

सरपीड़ा मिस बोलि तिय, मस्तकहीं चंपवात ;
अचरा ओट ते निरखि कुच, हियरे अति हुलसात ।

आजकल ससार की प्रगति पर विचार करने से यह प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है कि जमाना बडा टेढा है। चारों ओर छल, कपट, धोखेबाजी इत्यादि का जाल-सा फैला हुआ नजर आता है। आश्चर्य तो तब होता है, जब देखते हैं कि ऊपर से मनसा वाचा कर्मणा शुद्ध दीखनेवाले साधु बावा ही सबसे ज्यादा चालाक, कपटी, धूर्त, धोखेबाज और विपयग्रस्त निकलते हैं। अब गुजर कैसे हो। विश्वास पृथ्वी पर से उठा चाहता है। जहाँ दृष्टि डालें, वहाँ ही बगुलाभगत, कपट-जाल फैलाए, ऊपर से साधुवेश बनाए दिखलाई देते हैं। यहाँ तक कि जतुओं तक में भी ऐसे कपटी जीवो की कमी नहीं है। मकडी ही को लीजिए। कैसा तुच्छ जानवर है! पर कपट देवता ने इसके हृदय में आसन जमा रक्खा है। देखिए, कैसा सुदर, मनमोहक, भडकीला जाल बनाकर, उसके एक कोने में दुबककर बैठी हुई, मन में यह माला फेरती रहती है कि कही कोई भोली भाली मक्खी उसमें आ फँसे, तो पौ बारह पच्चीस हो जायँ। मक्खियाँ

बेचारी इनके शुद्ध और निष्कपट हृदय। इस पेचीले जान की गैल, नखरों इशारों पर जुआ हो, इनकी भूलभुलैयाँ में घुस ही जाती हैं। फिर जो मजनूँ की हालत होती है, और मेहरों को जो हर्ष होता है, उसका अनुमान आप ही कर लें।

इधर इसी पाठ की नकल पर हमारे नायकजी ने भी अपनी कार्य सिद्धि के लिये युक्ति निकाली। आप पलँग पर पड़े हैं, नींद नहीं आती। आँखों के सामने प्रिया के सुघर पूर्णोन्नत कुचयुगल चक्कर लगा रहे हैं। उनको देखने की प्रबल इच्छा है, परन्तु अपना यह आशय प्रगट कैसे करें? थोड़ी देर सोचने पर एक युक्ति सूझी। कपट-पूर्ण संसार में तो आप रहते ही थे। फिर युक्ति भी कपटमय होती, तो आश्चर्य ही क्या था। मस्तक-शूल का बहाना कर, पड़े पड़े कराहने लगे। जाल ऐसा बिछाया कि नाग पाश को भी मात कर गया। अगर और कोई बीमारी होती, तो लक्षणों से भी पहचानी जा सकती थी। परन्तु यहाँ तो मस्तक-पीड़ा है। नायिका से अपने प्रिय की यह दशा देखी न गई और वह झट उनके पास आकर उनका मस्तक दबाने लगी। बेचारी भोली भाली इस छल को न जानकर कपट-जाल में फँस गई। भला वह क्या जानती कि यह तो नायकजी का कपट है, जिसकी ओट में वे अपना कुचदर्शन रूप कार्य साधना चाहते हैं। उसके

तो हृदय मे प्यारे की व्यथा देख-देखकर वेदना होती थी। परन्तु जरा इन भोले बने हुए नायकजी की कार्यवाही तो देखिए। नायिका का अचल तो उनके मुख पर पडा ही था। बस उसी की ओट से खूब मन भरकर उन कुच-पहाडों की निराली शोभा देखने लगे। अब क्या था। वेदना एकदम मिट गई। हृदय मे शाति की ठढी लहर उठ गई। शोभा को निरखते ही गए। आखिर नायिका ने ही अपने कार्य को बद कर दिया।

प्रेमपगी प्यारी

जल भरि आवति नारि, मारग में प्रीतम मिले।
[illegible], प्रगट [illegible]।

लज्जा स्त्रियों में स्वाभाविक है। लज्जा स्त्रियों का आभूषण है। इसके बिना उनके और सब गुण शून्य के समान हैं। इस दोहे में कवि ने प्रेम के साम्राज्य में, लज्जा का भावमय चित्र खींचा है। भाव यह है कि एक दिन नायिका सरोवर से जल भरकर घर की ओर लौट रही थी। रास्ते में सामने आते हुए आजकल की नई रोशनीवाले नायकजी, हाथ में छड़ी लिए, तिरछी टोपी धरे, रिस्टवाच धारण किए और आँख पर साइनस चीरों का चश्मा चढ़ाए, फैशनेबुल बाबू साहब के वेश में मिले। नायिका ने इनको देख लिया और विचार करने लगी कि इनको न-जाने कैसा भूत सवार है कि जहाँ मैं जाऊँ, वहाँ आप भी आ हाजिर होते हैं। जहाँ-तहाँ मुझे लज्जित करते हैं। देखूँ ये और किसी रास्ते पड़ जाते हैं या नहीं। परंतु नायकजी ठहरे पूरे तालीमयाफ्ता। उनको और क्या चाहिए था? इसी मिलन के उद्देश्य से तो ये बन-ठनकर घर से निकले ही थे। अतः छड़ी घुमाते-घुमाते उसी ओर चल पड़े। जहाँ पर मिलाप हुआ, उस जगह का दृश्य तो

तो हृदय मे प्यारे की व्यथा देख-देखकर वेदना होती थी। परतु जरा इन भोले बने हुए नायकजी की कार्यवाही तो देखिए। नायिका का अचल तो उनके मुख पर पडा ही था। बस उसी की ओट से खूब मन भरकर उन कुच-पहाडों की निराली शोभा देखने लगे। अब क्या था। वेदना एकदम मिट गई। हृदय मे शाति की ठढी लहर उठ गई। शोभा को निरखते ही गए। आखिर नायिका ने ही अपने कार्य को वद कर दिया।

सरोज पर शशि

नीलांबर में राधिका, अंक कृष्ण के कर।
जमुना जल उत्पन्न जिमि, मानहु ससक सरोज।

राधा जी नीले रंग की सुंदर साड़ी पहने हुए है। सोलह शृंगार किए खड़ी है, मानो मोतियों की लड़ी है। बड़ी ही सुंदर शोभ पड़ती है। इतने ही में बनविहारी कृष्ण उधर आ निकले। राधा का मुख-मंडल मनमोहन को आते देख मधुर मुसकिराहट की आभा से आलोकित हो गया। दोनों ने एक दूसरे को प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखा। सुख की सीमा न रही। दोनों प्रेम के प्रवाह में बहने लगे। कृष्ण ने प्रेम से राधा को गोद में उठा लिया। कृष्ण की गोद में राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो कालिंदी में खिले हुए नीले कमल पर ससक चंद्र बैठा है। कृष्ण तो कालिंदी हैं। राधा की नीली साड़ी नीला सरोज है। उस साड़ी में से राधा का मुख ऐसे प्रतीत होता है, मानो ससक चंद्र नीले कमल पर बैठा है। शशि ससक इसलिये बैठा है कि वह जानता है, सरोज सरस्वती का आसन है। इसीलिये तो वे 'कमलासिनी' कहलाती हैं। अतः चंद्र को ख़याल है कि कहीं सरस्वती देख लेंगी, तो नाराज़ हो जायँगी। सो डरते-

देखते ही बनता है। इधर तो बेशरमी का बाना पहने नायकजी आए, उधर लज्जा और स्त्रियोचित सकोच से कपायमान गातवाली, सिर पर जल-पूर्ण गगरी रक्खे, नायिका भी आ पहुँची। पास आने पर दोनों की आँखे चार हुई। प्रेम ने दोनों के हृदयों को जकड़कर प्रेम-सूत्र मे बाँध दिया। नायिका के शरीर मे इस मिलन से पैदा हुई जो धकधकी-कँपकँपी शुरु हुई, तो उसी आवेश मे मस्तक की गगरी डग-मगी और स्थानच्युत हो धरती पर जा गिरी। बेचारो के वस्त्र सब भीग गए। भीग जाने के कारण झीने वस्त्र अग से सट गए और उनके अदर से नायिका का सुवर्ण-वर्ण गात अद्भुत आभा दिखाने लगा। अब सच्ची हालत मालूम हो गई। पहले अगर कोई नायक-नायिका के इस अभिनय को न भी देख पाता, तो अब तो अच्छा मौका मिल गया। नायिका शर्म के भार से इतनी दब गई कि कुछ समय तक वहाँ से हिलना तक मुश्किल हो गया। नायकजी ठहरे बेशर्मों के बादशाह। वे तो एक चतुर दर्शक की तरह इस दृश्य को देख-देखकर मजा लेने लगे। परंतु नायिका का हाल बुरा हुआ। जिस लज्जा के द्वारा उसने अपने आपको इस अवसर पर रक्षित रखना चाहा था, उसी ने प्रेम के बहकाने में आकर उल्टी उसकी हँसी उड़वा दी। मच है, बुरे वक्त में कोई किसी का साथ नहीं देता।

सरोज पर शशि

नीलांबर में राधिका, अंक कृष्ण के अंक।
जमुना मध्य उज्ज्वलित है, मनहु मदन मयंक।

राधा नीले रंग की सुंदर साड़ी पहने हुए है। सोलह शृंगार किए खड़ी है, मानो मोतियों की लड़ी है। बड़ी ही सुंदर दीख पड़ती है। इतने ही में ब्रजविहारी कृष्ण उधर आ निकले। राधा का मुख-मंडल मनमोहन को आते देख मधुर मुसकिराहट की आभा से आलोकित हो गया। दोनों ने एक दूसरे को प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखा। सुख की सीमा न रही। दोनों प्रेम के प्रवाह में बहने लगे। कृष्ण ने प्रेम से राधा को गोद में उठा लिया। कृष्ण की गोद में राधा इस प्रकार शोभा देती हैं, मानो कालिंदी में खिले हुए नीले कमल पर सशंक चंद्र बैठा है। कृष्ण तो कालिंदी हैं। राधा की नीली साड़ी नीला सरोज है। उस साड़ी में से राधा का मुख ऐसे प्रतीत होता है, मानो सशंक चंद्र नीले कमल पर बैठा है। शशि सशंक इसलिये बैठा है कि वह जानता है, सरोज सरस्वती का आसन है। इसीलिये तो वे 'कमलासिनी' कहलाती हैं। अतः चंद्र को खयाल है कि कहीं सरस्वती देख लेंगी, तो नाराज हो जायँगी। सो डरते-

देखते ही बनता है। इधर तो बेशरमी का बाना पहने नायकजी आए, उधर लज्जा और स्त्रियोचित संकोच से कंपायमान गातवाली, सिर पर जल-पूर्ण गगरी रक्खे, नायिका भी आ पहुँची। पास आने पर दोनो की आँखें चार हुईं। प्रेम ने दोनों के हृदयों को जकड़कर प्रेम-सूत्र में बाँध दिया। नायिका के शरीर में इस मिलन से पैदा हुई जो धकधकी-कँपकँपी शुरु हुई, तो उसी आवेश मे मस्तक की गगरी डग-मगी और स्थानच्युत हो धरती पर जा गिरी। बेचारो के वस्त्र सब भीग गए। भीग जाने के कारण झीने वस्त्र अंग से सट गए और उनके अंदर से नायिका का सुवर्ण-वर्ण गात अद्भुत आभा दिखाने लगा। अब सच्ची हालत मालूम हो गई। पहले अगर कोई नायक-नायिका के इस अभिनय को न भी देख पाता, तो अब तो अच्छा मौका मिल गया। नायिका शर्म के भार से इतनी दब गई कि कुछ समय तक वहाँ से हिलना तक मुश्किल हो गया। नायकजी ठहरे बेशर्मों के बादशाह। वे तो एक चतुर दर्शक की तरह इस दृश्य को देख-देखकर मजा लेने लगे। परंतु नायिका का हाल बुरा हुआ। जिस लज्जा के द्वारा उसने अपने आपको इस अवसर पर रक्षित रखना चाहा था, उसी ने प्रेम के बहकाने में आकर उल्टी उसकी हँसी उड़वा दी। सच है, बुरे वक्त में कोई किसी का साथ नहीं देता।

अपनी आँखों की लाज रखते हैं । अगर अपनी प्रिया को महीनों प्यारी की साड़ी पहनावें, तो गोरे गात की करामात कैसे देखें । वे तो बारीक वस्त्रों में से भी उन गात की शोभा बड़ी मुश्किल से पर्दे के सहारे से निरख पाते हैं ।

नायिका पीछे से आ रही है कि नही । चलते-चलते एक ऐसा कुंज आ गया कि जहाँ पर और कोई नहीं दीख पडता था। तुरत ही आपने अपनी चाल धीमी कर ली, जिससे नायिका उनको पहुँच सके । ज्यों ही नायिका पास से निकली, त्यों ही फौरन् लपककर आपने उसके अग को उँगली से छू दिया। छूते के साथ ही नायिका लजवती-लता की तरह बिलकुल अदर-की अदर सिमट गई ।

इस छूने में क्या आनद है ! इसको वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हे लजवती को छूने का कभी इत्तिफाक पड चुका है। हमारे कई एक वक्र दृष्टिवाले रंगीन चश्मा धारी साहित्यिक महापुरुषों ने महाकवि बिहारीलाल को भी इन्ही रँगीले नायक महोदय के रूप में देखकर उनका रँगीला स्वरूप चित्रांकित किया है ।

भीगी हुई साडी में से गोरे गात को देखकर किसकी तबयित नही गुदगुदाने लगती । इस गुदगुदी के आनद के लिये ही तो लोग विलायती बारीक वस्त्रों मे अपनी स्त्रियों को सजाते हैं, जिससे उनको इन अबलाओं के अग प्रत्यग के दर्शन होते रहे । बेचारे ऐसा करने को लाचार हैं, क्योंकि अपनी तीव्र दृष्टि को तो आधुनिक शिक्षा को अर्पण कर चुके हैं। अत 'शॉर्ट साइटेड' हो गए हैं । ऐनक धारण करके जैसे-तैसे

अपनी आँखों की लाज रखते हैं। अगर अपनी प्रिया को स्वदेशी खद्दर की साड़ी पहनावें, तो गोरे गात की करामात कैसे देखें। वे तो बारीक वस्त्रों में से भी उस गात की शोभा बड़ी मुश्किल से परदे के सहारे से निरख पाते हैं।

पीपल का पात

प्रेमदान मागत पिया, तिय नहिं छाँह छुवात,
नव पीपल के पात ज्यों, थरथर कापत गात।

प्रेमोन्मत्त नायक नायिका से प्रेम-दान मागते हैं। नायिका ठहरी विलकुल नवोढा। अतः स्वभावत सकुचाती है। फिर भला इस प्रस्ताव को कैसे मानती। मानना तो दूर की वात है, वह इसको सुनकर ही दूर रहती है, छाँह तक नही छुवाती। छाँह भी कैसे छुवाती ? उसके मन में तो यह भय समा रहा है कि कहीं ये मेरी छाँह को ही न पकड ले। शायद वह— "तिय-छवि छाया ग्राहिणी, गहे बीच ही आय।" विहारी के दोहे को स्मरण कर-कर यह सोचती होगी कि जिस प्रकार किन्हीं किन्हीं जीवों में छाया द्वारा ग्रहण करने की शक्ति होती है, उसी प्रकार वही शक्ति नायक मे भी हो। इधर तो इस भय से व्याकुल खडी-खडी वचाव का उपाय सोच रही है। उधर जब तब मौका पाकर नायक के कात वपु की ओर आँख चुराकर देख लेती है, तो समस्त शरीर में एक आंतरिक बिजली-सी दौड जाती है। उसे यह नहीं मालूम होता कि वह किस फेर में पडी है। परतु कामदेव मौक़ा देखकर उस पर

पीपल का पात

प्रेमदान मागत पिया, तिय नहिं छाँह छुवात,
नव पीपल के पात ज्यों, थरथर कापत गात।

प्रेमोन्मत्त नायक नायिका से प्रेम-दान मागते हैं। नायिका ठहरी बिलकुल नवोढा। अतः स्वभावत सकुचाती है। फिर भला इस प्रस्ताव को कैसे मानती। मानना तो दूर की बात है, वह इसको सुनकर ही दूर रहती है, छाँह तक नही छुवाती। छाँह भी कैसे छुवाती ? उसके मन में तो यह भय समा रहा है कि कही ये मेरी छाँह को ही न पकड लें। शायद वह—"तिय-छवि छाया ग्राहिणी, गहे बीच ही आय।" बिहारी के दोहे को स्मरण कर-कर यह सोचती होगी कि जिस प्रकार किन्हीं किन्ही जीवों में छाया द्वारा ग्रहण करने की शक्ति होती है, उसी प्रकार वही शक्ति नायक मे भी हो। इधर तो इस भय से व्याकुल खडी-खडी बचाव का उपाय सोच रही है। उधर जब तब मौका पाकर नायक के कात वपु की ओर आँख चुराकर देख लेती है, तो समस्त शरीर में एक आतरिक बिजली-सी दौड जाती है। उसे यह नहीं मालूम होता कि वह किस फेर में पडी है। परतु कामदेव मौका देखकर उस पर जादू कर

देते हैं। भय एक ओर खींचता है, तो अलक्ष्य रीति से और ज्यादा प्रबलता के साथ प्रेम दूसरी ओर खींचता है। इस खींचातान में बेचारी नायिका की दशा अत्यंत शोचनीय हो रही है। प्रेम भय पर विजय पा रहा है और उसे अपनी ओर खींच रहा है। समय-समय पर इन प्रबल विपत्तियों के आक्रमण के धक्कों को खाकर वह काँप उठती है। इस कंप ही का कविजी ने बड़ी कुशलता के साथ कथन किया है। इस दशा में वह ऐसी काँपती है, मानो पीपल वृक्ष का नवपात थर-थर काँप रहा है। कैसी स्वाभाविक उक्ति है।

पाठक! अगर आपने कभी पीपल-वृक्ष के नूतन पत्ते को हवा से काँपते देखा है, तो इस दृश्य का यथार्थ अनुभव कर आपकी आत्मा फड़क उठेगी। फिर सुकुमारता और स्निग्धता में भी यह पीपल का नवपात नायिका के यौवनोचित सौकुमार्य के समान ही होता है।

चारु चंद्रिका

सुमुखी संग मरुभूमि की, खिली चद्रिका चारु,
तड़के की शीतल पवन, तिन्हें न अन्य विचारु।

मरुस्थल के निर्मल नभ की चारु चद्रिका खिली हुई हो, सग में सु दर नायिका हो और प्रात काल की शीतल पवन चल रही हो, तो फिर किसको दूसरी बात का खयाल आ सकता है।

मरुस्थल की राते वास्तव मे बडी अच्छी होती हैं। स्वर्ग कासा सुख प्रतीत होने लगता है। आकाश बिलकुल साफ होता है। सृष्टि-रचना के पहले दिन जैसा वह दिखलाई दिया होगा, वैसा ही नया ज्ञात होता है। नीलम के झरोखे में से चद्र झाँकता रहता है। उसकी निर्मल चाँदनी ऐसी शोभा देती है, मानो किसी ने आकाश को चाँदी का झीना चीर ओढा दिया हो। रेगिस्तान में रेत के कण बहुत जल्द ठडे हो जाते हैं। शीतल पवन धीमी-धीमी अठखेलियाँ करता हुआ चलता रहता है। उसके थपेड़े इतने अच्छे लगते हैं कि बिछौना छोडने को तबियत नहीं चाहती। बीकानेर की चाँदनी रातों का जो मजा लूट चुके हैं, वे इसकी ताईद करेंगे। इन साज-सामानों का ही

मौजूद होना एक बड़ा भारी गुण है। फिर चन्द्रमुखी और आप हों, तब तो कहना ही क्या है। बस, समझ लीजिए कि सोने में सुगंध हो गई। फिर अन्य विचार का दाल कैसे गल सकता है। चारपाई में बैकुंठ की बहार है।

भारी भ्रम

चटक चाँदनी चैत की, सरजल करत विहार,

राधा श्यामहिं श्याम तहिं, ढूंढि न पावत पार।

मधुमास की चटक चाँदनी रात है। आकाशरूपी नीले और उज्ज्वल जल मे तारकाओं के साथ चद्र को विहार करते देखकर राधामाधव के मन में भी जल-केलि करने की कामना हुई जान पडती है। वे नीले और लाल कमलों से आच्छादित सरोवर में जल-क्रीडा करने गए हैं।

परतु पाठक! यह कैसा रहस्य है? वे तो एक दूसरे को खोज रहे हैं। नहीं-नहीं। खोजते-खोजते हैरान तक हो गए हैं, परतु पता नही चलता। आप चाहे जो इसका कारण समझें। हमारी समझ में तो यही आता है कि राधा तो लाल कमलों में और कृष्ण नीलोत्पलों में ऐसे मिल गए हैं कि एक दूसरे को दिखाई तक नहीं देते। परतु आखिर जाते कहाँ? कभी-न-कभी ढूँढते-ढूँढते कृष्ण लाल और राधा नीले कमलों में आते, तब अवश्य पता लग जाता। आप कहेंगे कि कृष्ण लाल कमलों पर भौरों की तरह मालूम होने से शायद राधा को न दिखाई देते। परतु ये तो राधा को देख लेते! वाह! आपने राधा को

बिलकुल बेवक़ूफ़ ही समझ लिया है क्या? जनाबेमन! क्या यह इतना भी नहीं जानता कि रात्रि में कमलों पर भ्रमर नहीं होते। आप कहेंगे, यदि ऐसा ही है, तो दोनों प्रकट हो ही जायँगे। परंतु प्रकट हो कैसे जायँगे, जब राधाजी तो चंद्रज्योति में मिल जाती हैं और घनश्याम सरोवर के श्याम और गहरे जल में। केवल एक उपाय है, जिससे कृष्ण तो राधाजी को नहीं देख सकते, परंतु हाँ, अलबत्ता वे उनको देख सकती हैं। यदि सरोवर में ही मिलना है, तो कृष्ण बोलें, क्योंकि राधिकाजी का कल-कंठ तो कोयल से मिलता है, और यदि बाहर मिलना है, तो राधाजी अपने नेत्रों को काम में लाएँ और जल से दूर कृष्ण को प्रत्यक्ष देखें। विरह-वेदना का निवारण करना मुश्किल है, तो बेचारे बिहारी ही के लिये, क्योंकि राधाजी को अदृश्य करनेवाली ज्योत्स्ना तो, क्या जल और क्या स्थल, सर्वत्र व्याप्त है। कैसा अपूर्व एकीकरण है—

बाम पै आना न आना तुम शबेमहताब में ;
चाँदनी छू जायगी मैला बदन हो जायगा।

स्नेह-शंका-सम्मिलन

एक दिना पिय ने कहो, करन केलि विपरीत ;
नतमुख ह्वै विहँसी प्रिया, नयनन में भय प्रीत ।

एक दिन रसिक नायक ने विपरीत रति करने की इच्छा नायिका से प्रकट की। नायिका सुनकर मुख नीचा करके मुसकिराने लगी। उसके नेत्रों से भय और प्रीति दोनों प्रकट हो रहे थे।

रति हो या और कुछ हो, विपरीत कार्य करते प्रत्येक प्राणी को भय प्रतीत होता है। सभव है, उधर गुरुजनों आदि का भय हो कि वे देख न लें। इधर नायक के प्रति हार्दिक प्रेम है, उधर रति से प्रीति होना स्वाभाविक है ही, तिस पर भी नायक कर चलाकर अपनी अभिलाषा प्रकट करना। अत नायिका ने नेत्रों मे प्रीति झलकाकर इस बात का पता दिया कि वह तो पतिदेव की आज्ञा पालन करने को उद्यत है, किंतु भय के कारण लाचार है। नीचा मुख करके नायिका ने लज्जा प्रकट की। इस प्रकार के प्रस्ताव पर लज्जा का होना स्वाभाविक ही है। मुसकिराकर नायिका ने प्रकट किया कि वह तो तैयार है, किंतु लज्जा के कारण विवश है। आँखें

दिल का आईना है। जो भाव दिल में होते हैं, उनका प्रतिबिंब आँखों में पड़ने लगता है। नायिका का लज्जा के कारण नत-मुख होना भय के रूप में और मुसकिराना प्रीति के रूप में आँखों में झलकने लगा।

कदंब-कुंज

केलि कामिनी कत करि, सोह कुज के द्वार,

मनहु आज एकत किए, रवि शशिहीं तहँ मार।

सुगधित और सुकामल लतिकाओं मे आच्छादित सघन और ठढा कदब-कुज किसके मन को मुग्ध नहीं करता? अब भी एसे कुज व्रज में पाए जाते हैं, परतु आनदकद श्रीकृष्णचद्र के जमाने में इन यमुना-तट के कुजों की कुछ निराली ही छटा थी। इसका कारण गोपाल की मधुर मुरलिका की अमृतमय तानों की वर्षा ही प्रतीत होती है। इस अमृत-सिंचन से निर्जीव पदार्थ भी डहडहा उठते थे।

हमारे कवि एक ऐसे ही कुज से विहार करने के बाद उसके द्वार पर खडे हुए, कुजविहारी और उनकी प्रियतमा राधा का वर्णन कर रहे हैं। सघन कुज नील गगन-सा जान पडता है। ज्योतिस्वरूप कृष्ण अपनी प्रभा के प्रभाव से प्रभाकर ही प्रतीत होते हैं। मुग्ध राधिकाजी की मृदु मुसकानमय मधुर मूर्ति, अपना मीठा प्रकाश फैलाती हुई मयक-सी मालूम होती है। बहुत दिनों से कोशिश करने और बाणों की बौछार से जगत् में प्रलय मचाने के पश्चात् कही मदन-

देव, सूर्य को अपनी प्रिया इन्दुमती के साथ मिलाने में, सफल हुए हैं। धन्य कामदेव, तुमने कभी न मिलने की आशा रखनेवाले प्रेमियों को भी मिला दिखाया !

शिथिल सरोजिनी

घनी केलि करि वाल तिय, पिय बिछुरत इमि सोहि,
शिथिल कमलिनी होइ निशि, अलसानी जिमि होहि।

प्रेममिलन और रत्यत सा क्या ही विनोदपूर्ण वर्णन है। नायिका मुग्धा है। अत. ससोच ही सा अश उसके स्वभाव में ज्यादा है। उसको रति-केलि की अत्यत इच्छा तो है, परतु सकोच-वश नायकजी के समक्ष प्रकट नही कहती। रात्रि में दपती का समागम हुआ। नायिका तो चाहती ही थी, उसकी तो यह इच्छा पहले ही से थी। जब वही इच्छा विना किसी प्रार्थना के पूर्ण होने को आई, तो वह मारे हर्ष के फूली न समाई, और उसी उमग मे केलि भी घनी की। जब विछुडने का समय आया, तब का वर्णन कविजी किस चातुर्य से करते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो सारे दिन अपने प्रियतम प्रभाकर से प्रेम-केलि कर पद्मिनी उनसे विछुडकर अब रात्रि में शिथिल पडी है।

यह तो स्वभाव-सिद्ध ही है कि जब किसी की उत्कट इच्छा विना विशेष प्रयास किए ही पूरी हो जाती है, तब इच्छापूर्ति के पश्चात उसे वह आनद मिलता है,

जिसमें मग्न होने पर किसी चीज की चिंता, चेतनता और कार्य करने की इच्छा नहीं रहती। उसमें विचित्र प्रकार की शिथिलता आ जाती है, और उस समय का उसका आलस्य भी आनन्ददायी होता है। यही हाल नायिका का था। जिस प्रकार प्रियतम पतग के साथ मिलन-रूपी अभिलाषा-पूर्ति के बाद कमलिनी शिथिल हो गई, उसी प्रकार वह भी अपना अभिमत पूरा कर शिथिलता, आलस्य और निश्चेतनता से शोभा देने लगी। धन्य हैं वे सुन्दरियाँ, जिनको इस शिथिलता का अनुभव होता है। यह तो उन्हीं के भाग्य में लिखा है, जो प्रेम का रहस्य समझ चुकी हों। एक कवि तो इसी शिथिलता पर लट्टू हो जाते हैं और चकर खाते-खाते ही बोल उठते हैं "सुरत मृदिताहि बाल ललना, तनिम्ना शोभन्ते" इत्यादि।

धन्य है प्रेम! शिथिलता जैसे आलस्योत्पादक अवगुण को भी गुणों का सरताज बनाना तुम्हारा ही कार्य है।

नेह मे नीति

बिरह बिथा लखि व्यथित है, बिछुरत तिय दुख पाय ;
का कइ अलि ! कहि फेरि मुख, निरखत कतहिं जाय ।

बिछुडने के पहले नायक और नायिका का मिलन हो रहा है। नायिका की सखियाँ किसी एकात स्थान में बैठी हैं। प्रेम-मिलन जब हो चुका और बिछुडने का समय आया, तो नायिका के हृदय को अत्यत दु ख हुआ। वही नायिका, जो थोडे समय पहले अपने प्रिय से मिलकर सब दु ख भूल गई थी, अब बिछुड़ते समय भविष्य की विरह-व्यथा का स्मरण कर, उस भयावने दृश्य को आँखों आगे रखकर विदारित-हृदय हो रही है। उसकी दशा बडी ही शोचनीय है।

एक खयाल होता है कि अगर प्रभु विरह न बनाते, तो उनका क्या बिगडता ? क्या उनको प्रेमियों के इस दु.ख में इतना मजा मिलता है, जो उनको इतना असह्य कष्ट देते हैं ? विरह-वेदना की तीव्र ज्वाला तो पूर्व के सब सुखों को जलाकर भस्मसात कर देती है। इसी से तो किसी सतप्त-हृदय कवि ने कहा है—"जुदाई गर न होती तो मुहब्बत चीज अच्छी थी।" परतु क्या हो, नायिका को किसी आवश्यक कार्यवश अपने मैके को जाना है।

इधर प्रेम उसके जाने में बाधा डालता है, तो उधर लज्जा उसको खींचती है। निदान वह जाने को तैयार होती है—दो-चार क़दम चलती है, परंतु अब तो प्रिय-मुख देखे बिना एक पल भी उसका जीना कठिन-सा जान पड़ता है। उधर स्त्रियोचित लज्जा भी उसको अपने आपको सँभालने की प्रेरणा करती है। वह अपनी इस हालत को सखियों से छिपाना चाहती है। परंतु दर्शन की अभिलाषा भी तो नहीं रोकी जा सकती। अतः नायिका एक तरकीब सोच निकालती है। एकआध क़दम चलकर वह पीछे मुख करके 'का कह सखि', 'क्या कहती हो सखी ?'—यह बात सखियों के बिना कोई प्रश्न पूछे ही उनसे पूछती है, और इसी व्याज से वह अपने प्रिय का दर्शन भी कर लेती है।

कहिए, कैसी चाल चली—'आम-के-आम और गुठली के भी दाम।' उधर प्रिय-दर्शनरूप मुख्य ध्येय भी सिद्ध हो जाता है, और इधर लज्जा भी रह जाती है। और सखियाँ भी यह जानकर ख़ुश होती हैं कि पति-प्रेम में संलग्न होने पर भी वह उनकी स्मृति को दिल से नहीं भुलाती। अच्छी नीति है।

प्रेम की प्रबलता

घिरि आए घनश्याम घर, नहिं आए घनश्याम ;
आज दिवस ठढो तऊ, मो कह लागत घाम ।

वर्षा-काल है। आकाश मेघाच्छन्न है। इसी समय विरह-वेदना से व्यथित वृषभानुजा अपने प्रियतम की बाट जोहती हुई बैठी हैं। घनघोर घटा को घिर आया देख, मन में प्रिय-मिलन की इच्छा उत्कट रूप धारण कर लेती है। वे सोचती हैं कि ये श्यामघन तो आकाशरूपी नायिका से मिलने के लिये चले आए, परतु मेरे हृदयरत्न श्रीव्रजविहारी अभी तक नहीं पधारे। क्या कारण है ? इन कारे कजरारे पयोधरों तक ने आज अपने प्रेम का पूरा परिचय दिया है कि आकाश-जैसी शून्य-हृदया नायिका के पास चले आए हैं। तब क्या मेरे हृदय में ही प्रेम का लवलेश नहीं है, जो घनश्यास इस अवसर पर नहीं आए ? मैं तो अपने प्रेम पर गर्व रखती थी, और निश्चय जानती थी कि कृष्ण इसके वश में हैं। मेरा तो यह ख़याल भी था कि जब चाहूँगी तब इसके द्वारा उनको बुला सकूँगी। परतु आज मेरा वह गर्व खर्व हो गया। आज मालूम हो गया कि कृष्ण को वश करने की मेरे प्रेम में ताक़त नहीं है। नहीं तो

भला आज बादलों और आकाश-जैसी निर्जीव जोड़ी का मिलाप हो जाता, और मैं यों ही वृथा प्रतीक्षा करती रहती।

इसी प्रकार की उधेड़-बुन में राधिकाजी पड़ी हैं। वे बार-बार, रह-रहकर अपने भाग्य को कोसती हैं, धिक्कारती हैं। अपने आपको बुरा भला कहती हैं, और कृष्ण को छली जानकर उनके कपट पर रोष प्रकट करती हैं। समय बहुत ठंढा है। वर्षा की बौछार से शीतल हुई समीर शरीर को स्पर्श कर सीत्कार पैदा करती है। परंतु क्या हो? यह सब साज राधाजी पर विरुद्ध विकार पैदा करते हैं। उनको यह समय ग्रीष्म-कालीन मध्याह्नवत् गर्म मालूम होता है। शीतल समीर के झकोरे लू का काम करते हैं। रह-रहकर, अपनी वर्तमान दशा का स्मरण कर उनके दिल में प्रिय-मिलनोत्सुकताजन्य हूक उठती है, और नैराश्यद्योतक निश्वास मुख से निकलती है। तब तो एक प्रचंड तूफ़ान शुरू हो जाता है, जिसके वेग में वे विचाररूपी संसार के इस ओर से उस ओर तक उड़ती रहती हैं। वर्षा तो उनको ऐसी लगती है, मानो आकाश से आग की चिनगारियाँ बरस रही हैं। ठीक है, भर्तृहरिजी ने कहा है—"अवस्था वस्तूनि प्रथयति संकोचयति च" सब कार्य अवस्था के अधीन हैं।

कोयल की कूक

कुंजनि में हैं जात हौं, दीन्ह कोइलिया कूक,
प्रिया जान को ध्यान कारे, उठी हिये में हूक।

नायिका को थोडे ही दिन पश्चात् अपने नैहर जाना है। यह बात नायकजी को विदित है। वे जब-तब इसका स्मरण कर बडा दु:ख पाते हैं। इसी सोच में उनका प्रतिदिन वर्ष के समान गुजरता है। ये बहुत चाहते हैं कि वह दिन कभी न आए, परंतु प्रकृति किसका अनुशासन मानती है। दूर रहने के बजाय वह दिन बहुत नजदीक आता जाता है। जब-जब वे प्रिया के भावी विरह का दु खमय
अपने हृत्पट पर उतार लेते हैं, तब-तब उसको
उन पर वज्रपात सा हो जाता है। पर करें क्या
वह आ ही जाता है।



संतप्त-हृदय नायक
को शात करने के
। उनका खयाल है कि
को थोडी शाति मिलेगी। परतु
नहीं है कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ

हैं, वहाँ भी दुर्दैव उनका पीछा करता है। भर्तृहरि महाराज की कही हुई रत्नखाट की कथा का स्मरण होगा, जो सूर्यातप से सम-मस्तक हो, ताल-वृक्ष के तले तनिक विश्राम लेने के लिये ठहरा था, और उसी समय उसके कच्ची हाँडी से मस्तक पर तालफल गिरा था, जिससे बेचारा भग्न-सिर हो मृत्यु को प्राप्त हुआ था। तब भला दुर्दैव-पीड़ित नायकजी का कहाँ पिंड छूटता? आखिर हुआ वही, जो होना था। वैरिन कोयल ने देवदूत का तमाम कार्य किया। कोयल की कूक सुन कोकिल-स्वरा अपनी प्रियतमा का स्मरण कर, जो दिल में हूक उठी, तो हृदय मारे व्यथा के टूक-टूक होने लगा। फिर तो उसी विरह-वेदना की याद में व्यस्त हो मूक की तरह इधर-उधर घूमने लगे। भूख प्यास सब भूल गई। जिधर देखा, उधर ही प्रिया की मधुर मूर्ति आँखों के आगे चक्कर लगाने लगी। रूख-रूख पर उसी कोकिल की कूक सुनने की उत्कट अभिलाषा से नजर फेंकते, पर फिर नैराश्य आ घेरता। इसी प्रकार भटकते-भटकते सब उपवन छान डाला, परंतु चित्त को बिलकुल शांति न मिली। उलटे व्यथा और बढ़ गई। आए किसी और ही मतलब से थे, पर हुआ कुछ और ही। निदान ... लौटे।

... पाठक! अब आगे के भयंकर दृश्य का आप स्वयं अनु-

कोयल की कूक

कुजनि में ह्वै जात हौं, दीन्ह कोइलिया कूक,

प्रिया जान को ध्यान करि, उठी हिये में हूक।

नायिका को थोड़े ही दिन पश्चात् अपने नैहर जाना है। यह बात नायकजी को विदित है। वे जब-तब इसका स्मरण कर बड़ा दुःख पाते हैं। इसी सोच में उनका प्रतिदिन वर्ष के समान गुजरता है। ये बहुत चाहते हैं कि वह दिन कभी न आए, परंतु प्रकृति किसका अनुशासन मानती है। दूर रहने के बजाय वह दिन बहुत नजदीक आता जाता है। जब-जब वे प्रिया के भावी विरह का दुःखमय चित्र अपने हृत्पट पर उतार लेते हैं, तब-तब उसको देख-देखकर उन पर वज्रपात सा हो जाता है। पर करें क्या ? आखिर वह दिन करीब आ ही जाता है।

प्रिया-विरह से संतप्त-हृदय नायक किसी प्रकार अपनी भावी विरह-व्यथा को शांत करने के विचार से उपवन-विहारों को निकलते हैं। उनका खयाल है कि शायद ऐसा करने से उनके हृदय को थोड़ी शांति मिलेगी। परंतु क्या आपको यह मालूम नहीं है कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ अपना भला सोचकर जाते

है, वहाँ भी दुर्दैव उनका पीछा करता है। भर्तृहरि महाराज की कही हुई खल्वाट की कथा का स्मरण होगा, जो सूर्यातप से तप्त-मस्तक हो, ताल-वृक्ष के तले तनिक विश्राम लेने के लिये ठहरा था, और उसी समय उसके कच्ची डाँडी से मस्तक पर तालफल गिरा था, जिससे बेचारा भग्न-सिर हो मृत्यु को प्राप्त हुआ था। तब भला दुर्दैव-पीड़ित नायकजी का कहाँ पिंड छूटता? आखिर हुआ वही, जो होना था। वैरिन कोयल ने देवदूत बन तमाम कार्य किया। कोयल की कूक सुन कोकिल-स्वरा अपनी प्रियतमा का स्मरण कर, जो दिल में हूक उठी, तो हृदय मारे व्यथा के टूक-टूक होने लगा। फिर तो उसी विरह-वेदना की याद में व्यस्त हो मूक की तरह इधर-उधर घूमने लगे। भूख प्यास सब भूल गई। जिधर देखा, उधर ही प्रिया की मधुर मूर्ति आँखों के आगे चक्कर लगाने लगी। रूख-रूख पर उसी कोकिल की कूक सुनने की उत्कट अभिलाषा से नजर फेंकते, पर फिर नैराश्य आ घेरता। इसी प्रकार भटकते-भटकते सब उपवन छान डाला, परन्तु चित्त को बिलकुल शांति न मिली। उलटे व्यथा और बढ गई। आप किसी और ही मतलब से थे, पर हुआ कुछ और ही। निदान घर लौटे।

पाठक! अब आगे के भयंकर दृश्य का आप स्वयं अनु-

मान कर लीजिए। नायिका आज ही जानेवाली है। उसके जाने पर बेचारे नायकजी का क्या हाल होगा, वह आप अनुमान की दृष्टि से देखिए। हमारी लेखनी तो इसको लिखते काँपती है। भला कोयल की कूक को सुनकर, प्रिया का ध्यान कर जिनका यह हाल हुआ, तो फिर प्रिया के चले जाने पर क्या होगा, सो तो ईश्वर ही जाने। सच है, देव-निहत पुरुषों का कष्ट मेटना विधि के भी हाथ नहीं है।

विरही विधु

भामिनि यामिनि संग रमत, चन्द विरहिनी ताप,
जो मारी कलुषित भयो, विरही हिं के शाप।

पूर्णिमा का प्रताप चारों ओर छाया हुआ है। पूर्णेंदु अपनी पूर्ण-कला का प्रकाश फैला रहा है। एक विशाल अट्टालिका के उज्ज्वल चौकों पर चारु चंद्रिका की चमक निराली ही मालूम होती है। इसी भवन की एक ऊँची अटारी पर एक नवेली नारी चूने से पुते हुए चमकीले चौक पर, बिना किसी पलँग या पट के, नीचे ही विरह की पीड़ा से पीड़ित होकर पड़ी है। सुधांशु का शीतल रश्मि-पाश उसके केश-पाश को छूकर गर्म हो उठता है। उसके रोम-रोम से जलती हुई विरह की ज्वाला निकल रही है। शरद्-ऋतु में भी उसकी गर्म आहें लू की लपेटों का स्मरण कराती हैं। परंतु चंद्रदेव को इसकी कुछ परवाह नहीं। वे बेचारी विरहिनी की इस निकट वेदना को देखकर भी उसका कुछ उपाय या उपचार नहीं करते, किंतु निःशंक होकर अपनी प्रिय भामिनी यामिनी के साथ रमण कर रहे हैं। उनका यह निर्दयता पूर्ण कठोर व्यवहार भला वह विरहिनी कैसे सहन

कर सकती थी। उसने बहुतेरा रोका, परन्तु आखिर उसके मुख से धधकती हुई साँस के साथ जलता हुआ शाप निकल ही गया—"तू मेरे-जैसे विरह-वेदना से व्याकुल व्यक्तियों पर कुछ भी करुणा नहीं करता, उनके दुःख को देखकर उलटा हँसता है, इसलिये जा तू भी विरही हो जा।" उस विरहिनी के सतप्त हृदय से निकला हुआ यह शाप भला कहीं झूठा हो सकता था। उसको तो विधि तक नहीं टाल सकता। फिर यह तो बिचारा विधु ही ठहरा।

कृष्णपक्ष में चंद्र अपनी प्रिया निशादेवी से दूर रहने लगे। विरही होकर विधु दिन-दिन तनछीन मनमलीन होने लगा। विरह-ज्वाला ने भयकर रूप धारण करके उसके हृदय को भस्म कर दिया। इसी कारण कलानाथ का हृदय-कमल कलुषित होकर काला हो गया। यही कलानाथ के कलक का कारण है। दीन-दुखियों की दयनीय दशा पर दया न दिखानेवाले दुष्टों की यही दु खपूर्ण दशा होनी चाहिए।

विद्युत्-विहीन बादल

हिय कबहूँ चपला नहीं, सावन भादों नैन ।

पर सावन बिन बाँसुरी, बरसत है दिन रैन ।

विरहिनी नायिका के दोनों नैन सावन भादों की समता करते हैं। जैसे सावन भादों में झड़ी लग जाने के पश्चात् बिजली की चमक नहीं रहती और पानी झरता ही रहता है, वैसे ही नायिका के मुख-रूपी मेघ पर बिजलीरूपी हँसी का नाम तक नहीं है। वह दिन-रात आँसू बहाती है। सावन-भादों की-सी झड़ लग गई है। बेचारी सुकुमार नायिका का कोमल हृदय विरह के ताप में पिघल गया है, और नेत्रों के द्वार से बाहर की ओर बह चला है।

इस हृदय की हम क्या कहें। इस पर हमें बड़ी दया आती है—इसको घड़ी-भर भी चैन नहीं है। कभी विरह-वेदना में पिघल कर बहने लगता है, कभी प्रेम-प्रकाश की प्रखर किरणों के प्रभाव से पिघलकर प्रेमाश्रुरूप में प्रकट होता है, कभी दया, करुणा आदि अन्यान्य भावों से आर्द्र होने पर भी पिघल पड़ता है। पता नहीं, यह हृदय कितना बड़ा है कि इसका अभी तक अंत ही नहीं आया। बहुत-से झरने सूख

कर सकती थी। उसने बहुतेरा रोका, परतु आखिर उसके मुख से धधकती हुई साँस के साथ जलता हुआ शाप निकल ही गया—"तू मेरे-जैसे विरह-वेदना से व्याकुल व्यक्तियों पर कुछ भी करुणा नहीं करता, उनके दु.ख को देखकर उलटा हँसता है, इसलिये जा तू भी विरही हो जा।" उस विरहिनी के सतप्त हृदय से निकला हुआ यह शाप भला कहीं झूठा हो सकता था। उसको तो विधि तक नही टाल सकता। फिर यह तो विचारा विधु ही ठहरा।

कृष्णपक्ष में चद्र अपनी प्रिया निशादेवी से दूर रहने लगे। विरही होकर विधु दिन-दिन तनछीन मनमलीन होने लगा। विरह-ज्वाला ने भयकर रूप धारण करके उसके हृदय को भस्म कर दिया। इसी कारण कलानाथ का हृदय-कमल कलुपित होकर काला हो गया। यही कलानाथ के कलक का कारण है। दीन-दुखियों की दयनीय दशा पर दया न दिखानेवाले दुष्टों की यही दु.खपूर्ण दशा होनी चाहिए।

विद्युत्-विहीन बादल

बिन चमकें हास नहीं, सावन भादों नैन

झर लागत बिन आँसुआ, बरसत हैं दिन रैन ।

विरहिनी नायिका के दोनों नैन सावन-भादों की समता करते हैं। जैसे सावन-भादों में झड़ी लग जाने के पश्चात् बिजली की चमक नहीं रहती और पानी झरता ही रहता है, वैसे ही नायिका के मुख-रूपी मेघ पर बिजलीरूपी हँसी का नाम तक नहीं है। यह दिन-रात आँसू बहाती है। सावन-भादों की-सी झड़ लग गई है। बेचारी सुकुमार नायिका का कोमल हृदय विरह के ताप से पिघल गया है, और नेत्रों के द्वार से बाहर की ओर बह चला है।

इस हृदय की हम क्या कहें। इस पर हमें बड़ी दया आती है—इसको घड़ी-भर भी चैन नहीं है। कभी विरह-वेदना से पिघल कर बहने लगता है, कभी प्रेम-प्रकाश की प्रखर किरणों के प्रभाव से पिघलकर प्रेमाश्रुरूप में प्रकट होता है, कभी दया, करुणा आदि अन्यान्य भावों से आर्द्र होने पर भी पिघल पड़ता है। पता नहीं, यह हृदय कितना बड़ा है कि इसका अभी तक अंत ही नहीं आया। बहुत-से झरने सूख

गए, बहुत-सी नदियों तक का नाम न रहा, परंतु इस झरने में तो पति-प्रेम का प्रवाह अभी उमड़ ही रहा है। यह झरना तो मरने पर ही झरना बंद करेगा, वरना यों ही झरता रहेगा।

विरह-वेदना

मिलन होत है स्वप्न में, बिछुरत जिनमें चैन,
पै दुखिया के दियो कबहुँ, या बिन पलहु लगै न।

नायक विदेश को जा रहा है। बिछुड़ते हुए बड़ा दुखी हो रहा है। इस प्रकार उसकी दयनीय दशा को देखकर नायिका यह कहकर उसे धैर्य दिलाती है कि घबराने की कोई बात नहीं है, क्योंकि स्वप्न में अवश्य मिलन होगा। नायक उस समय तो यह सुनकर किसी प्रकार अपने मन को समझाकर रह होता है।

किंतु पाठको! ज़रा कलेजा थामकर सुनिएगा। याद में बेचारे नायक की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई है। मिलना तो दूर किनार रहा, गरीब को नींद तक नहीं आ रही है। प्यारी का मुखचंद्र देखे बिना अँखियाँ पहले ही चकोर की तरह अकुला रही थीं, तिस पर नींद का न आना और नई मुसीबत है। दुखियाँ अँखियाँ पल-भर के लिये भी नहीं लगती हैं। संभव है कि किसी शुभ मुहूर्त में पल-भर के लिये भी लग जायँ, तो प्रिया के दर्शन हो जायँ। प्यारी के बिना नींद हराम हो रही है। नींद आवे तब न स्वप्न आवे, वहाँ

तो प्यारी के साथ-साथ बेचारे को नीद के साथ भी वियोग हो गया है। न प्यारी मिले, न नीद आवे और न स्वप्न आने की आशा की जाय। सच बात है, मुसीबत में कौन किसका साथ देता है—

कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक,
मरते दम देखा है कि आँख भी फिर जाती है।

बेचारे ने स्वप्न के मिलन पर भी संतोष कर लिया। परंतु उसके भाग्य मे तो यह भी नही लिखा है। दिल के आईने में दर्शन करता, किंतु वह नायिका के पास रह गया। गरीब रात-दिन बिस्तरे पर पडा करवटें बदला करता है। बडी मुसीबत में है। सच तो यह है कि—

जुदा किसी से किसी का कभी हबीब न हो,
यह दर्द वह है कि दुश्मन को भी नसीब न हो।

मदन का गुप्तचर

[illegible] करत गगन, पा [illegible] निदेस।
प्यारी की पहरो सदा, देत बदलि कै भेष।

चाँद कभी छोटा दिखलाई देता है, और कभी बड़ा, सो कोई यह न समझे कि यह घटता-बढ़ता है। किस्सा यह है कि नायिका पर विशेषकर कामदेवजी महाराज आसक्त हैं। जैसा कि उपपतियों का स्वभाव होता है, आपको सदा इस बात का संदेह रहता है कि प्रेमिका गुप्तरूप से कहीं किसी दूसरे यार से न मिल ले। अतः आपने चंद्रमा के नाम हुक्म निकाल दिया है कि वह बिला नागा हर रोज भेष बदलकर उनकी माशूका साहबा की निगरानी रक्खे कि वह किसी और यार से बातचीत न करे। कामदेव के जासूसों ने तो जर्मन-जासूसों को भी मात कर दिया। यह तो हमें मालूम था कि चंद्र कामदेव के मददगारों में से है। मगर यह तो हमें अब मालूम हुआ कि चंद्र कामदेव की खुफिया पुलिस में मुलाजिम है, और जासूसी किया करता है। ऐसा ज्ञात होता है कि कामदेव की माशूका खूबसूरती में उनकी स्त्री रति से भी बढ़ी-चढ़ी है। तभी न यहाँ तक नौबत पहुँची है कि चंद्र-ऐसों को जासूसी के लिये तैनात किया गया है।

सुर-सरिता

पौन साँस ठढी चले, बरसे नैननि नीर,
छलछलाय कुच गिरि गिरें, गिरें अक भू धीर।

वर्षाऋतु का पूरा-पूरा सामान जुटा है। विरह के बादलों ने नायिका के धैर्यरूपी आकाश को आच्छादित कर लिया है। नायिका ठढे नि श्वास भर रही है। वही मानो पुरवाही पवन के ठढे झोंके हैं। यह लो मूसलाधार वर्षा होने लगी, रिमझिम-रिमझिम बूँदे पडने लगीं, झरझर आँसुओं की झडी लग गई। यह पानी की घनी और तेज बौछार प्राणियों को सुख न देकर, उल्टा उन्हें दु ख ही देने लगी। छलछल करती हुई जलधार कुचरूपी पर्वतो पर पडने लगी। फिर गोद-रूपी भूमि पर गिरकर समुद्र की ओर प्रवाहित होने लगी। साथ ही उसके अक से धैर्य भी धुल गया और छूटकर पृथ्वी पर जा रहा। जैसे पहाड पर गिरकर पानी अपने साथ पत्थर इत्यादि को उखाडकर बहा ले जाता है, वैसे ही अश्रुधार नायिका के हृदय पर गिरकर वहाँ से उसके धैर्य को बहा ले चली। पत्थर इत्यादि तो जमे होते हैं, परतु उसका धैर्य तो पहले से ही उखड़ा हुआ था, फिर उसके आँसुओं के प्रबल प्रवाह के साथ

बढ़ते क्या देर थी। यह नगी ग्वी के शरीररूपी भूमि को ऊजाऊ बनाकर उसका हास करने लगी।

इस नायिका की इस अश्रुधारा को सुरसरि की उपमा दे सकते हैं, क्योंकि यह भी गंगा की तरह त्रिपथगा है। विरह-रूपी भगीरथ के तप के प्रभाव से, नैनरूपी विष्णु के चरणों को छोड़कर, कुचरूपी शिवजी के मस्तक पर गिरकर, अंक-रूपी पहाड़ पर गिरी, और वहाँ से भूमि पर पतित होकर सागर की ओर प्रवाहित होने लगी। सच है—"विवेकभ्रष्टानांतुभवति विनिपातो शतमुख.।"

बहुरूपिया विधु

बहूरूपियो बनत है, घटत बढत नहिं चद ,

देख वियोगिनि कहँ दुखी, देत रहत आनद ।

लोगों का यह खयाल कि चंद्र घटता-बढता है, बिलकुल गलत है। वास्तव मे बात यह है कि चद्र परोपकार-वश वियोगिनियों के दु ख से दु खित होकर उनका मनोविनोद करने के लिये बहुरूपिया बनता है। बहुत मुमकिन है कि यही बात हो, क्योंकि चद्र के परोपकारी जीव होने में तो कोई शक नहीं है। चाँदनी रातें हमको इसी की बदौलत नसीब होती हैं। अब वियोगिनियो के भाग्य खुल गए समझ लो। चद्र-सा निष्काम सेवक भला इनको मिल गया, अब क्या चाहिए। इसके नित नए-नए रूप देखें और आनद से रहे।

मगर एक बडा जुल्म हो गया। बेचारे बहुरूपियों की रोजी छिन गई। उनको चाहिए कि अब कोई और पेशा अख्तियार करें। भला जब चंद्र-से चतुर जन इस काम को करने लगे, तो अब अन्य लोग इस कार्य को मुकाबले में सफलता-पूर्वक कर सकेंगे, यह आशा कैसे की जाय।

आँखमिचौनी का आनंद

बदरा में प्रगटत दुरत, करत केलि आनंद ;
आँखमिचौनी मनु रचत, तारन के सँग चंद ।

कभी बादलों में छिप जाता है, कभी प्रकट हो जाता है । इस प्रकार चंद्र आनंदपूर्वक ताराओं के साथ आँखमिचौनी खेल रहा है । पाठकों में से जो इस खेल को खेल चुके हैं, वे जानते हैं कि इस खेल में क्या आनंद है । आकाश में कहीं-कहीं बादलों के टुकड़े दीख पड़ते हैं, सो उनकी ओट में कभी तो चंद्र हो जाता है और कभी तारे हो जाते हैं । मनोविनोद की आवश्यकता सबकी प्रतीत होती है । विनोदप्रिय होने के कारण ही तो हम देखते हैं कि चंद्रमा इतनी आयु का हो जाने पर भी अभी बिलकुल जवान दीख पड़ता है । यह सब खेल-कूद ही की बदौलत है ।

प्रेम-प्रतीक्षा

आशा आलोकित कबहुँ, कबहूँ चिंता चूर ;
द्वार ओर इक चद्रमुखि, देखि रही मदपूर ।

सावन की काली डरावनी साँपिन-सी रात है । रह-रहकर बादलों में बिजली चमक जाती है । ऐसे समय एक कामातुर कामिनी, जिसका मुखडा उस अँधेरे में चद्रमा के समान चमक रहा है, उचक-उचककर बार-बार द्वार की ओर देख रही है। ऐसा ज्ञात होता है कि उसे अपने प्यारे की प्रतीक्षा है । उसके चेहरे पर कभी चिंता का चित्र खिंच जाता है, तो कभी नैराश्य के निशान नजर आते हैं । कभी मुख-मडल पर आशा का अक्स पडने लगता है, तो कभी वह आनद से आलोकित हो उठता है । क़ाबिलदीद नजारा है, एक अनिर्वचनीय उपाख्यान है । बडा ही भावपूर्ण और सुदर चित्र है । आशा और चिंता का बडा ही मनमोहक मिश्रण है । परतु इन भावों को अच्छी तरह वे ही समझ सकते हैं, जो पहले कई दफे ऐसे चित्र देख चुके हैं, जो हिज्र की रात का मजा लूट चुके हैं । इतजार में भी एक अनूठा आनद है—

किस-किस तरह की दिल में गुजरती है हसरतें ;
है वस्ल से भी ज्यादा मजा इतजार में ।

प्रेम-पत्र

[illegible] लिखन बैठी [illegible], [illegible] सूखि है [illegible],
है बैठी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

चित्र सुंदर है, भाव उत्कृष्ट है। कविजी के इस भावमय चित्र को आँखों के सामने रख, अनिमेष हो, सौंदर्य-रस का पान कीजिए। भाव सीधा-सादा है, परंतु इसकी गूढ़ता को देखने से यह प्रतीत होता है, मानो स्वाभाविकता इससे टपक रही है। पति को परदेश गए बहुत समय हो गया है। नायिका उनको पत्र लिखने के विचार से कागज-कलम लेकर बैठी-बैठी सोचती है कि क्या समाचार लिखूँ। इधर दिमाग़ में एक के बाद एक भाव इस शीघ्रता से आ रहे हैं, मानो उनकी बौछार लगी है। उधर जब प्रेम की तराजू में रखकर प्रत्येक भाव को तौला जाता है, तो कम उतरता है। घंटों इस प्रकार बीत गए। इसी तरह भाव आते गए और ना क़ाबिल कह-कहकर छोड़ दिए गए। पत्र कोरा-का-कोरा रक्खा है। हाथ में जो लिखने के लिये क़लम ले रक्खी थी, समय ज्यादा हो जाने से उसकी भी स्याही सूख गई। आख़िर विचार किया कि अभी तक कुछ नहीं लिखा। परंतु लिखती तो भी क्या? भाव तो कोई

मन में जँचा ही नहीं था। अत मे वही 'ढाई अक्षर प्रेम के' लिख दिए जो पति-प्रेम की प्रेरणा से उसके मस्तिष्क के अग्र भाग में थे। 'प्रिये' लिखकर सोचने लगी कि पत्र में क्या लिखूँ। सोचते-सोचते मानसिक चक्षु के आगे प्रियतम की हूबहू तस्वीर, हाव-भाव, कटाक्ष, प्रेम-मुसकान और बातचीत करते हुए रूप में खिच जाती है। नायिका 'चित्रार्पितारभ' की तरह निश्चल हो, इस छवि को निरखने लगती है और नायक के रूप में अपने रूप का प्रतिबिंब देखकर आप ही अपनी छवि पर विमुग्ध हो जाती है। यही कारण है कि सात्विक-भाव-विभ्रम वश स्त्रीलिंग में 'प्रिये' सबोधन करती है। इस धुन में लगी हुई पति, की सुधि में लीन उसको देख, सबको यही ख़याल होता है कि वह दीवानी हो गई है। वास्तव में उसको इस दशा में और पागलपन में कोई विशेष अतर नही है। आत्मविस्मृति में लीन नायिका पत्र का समेटकर, बडी खुशी के साथ नायक के पास भिजवा देती है। उसको यह सूझता ही नहीं कि उसकी पत्री कोरी है। वह तो राजी हो रही है कि मैंने खूब अच्छे भाव भरकर पत्री लिखी है।

परतु पाठक, क्या सचमुच उसने कोरी पाती दी है? नहीं-नहीं, हमारा तो ख़याल है कि आज तक शायद ही किसी

ऐसी भावपूर्ण पाती लिखी हो। हमें तो यह भी निश्चय
भावना मात्र 'प्रिये' शब्द में भरा था, उसका दरसाने—
में, उसका आभास तक दिखाने—में चुनी हुई बड़े-बड़े
हु पण्डितों की पूरी बेंच तक कामयाब नहीं होगी।
प्रिये' शब्द में आगे उनकी सारमयी भावपूर्ण पत्री
रा करेगी।

मार की मार

फूलन के गहि धनुष सर, भौंरन जिहि पर तान,
अतनु मार मारत सबै, तजत मान गुन कान।

अन्यान्य ऋतुओं मे तो रतिनाथ को बडी मुश्किल से कहीं धनुष-शर बनाने की सामग्री मिलती होगी, परतु ऋतुराज वसत उनके लिये अनेकानेक सु दर सुगधित सुमनों का उपहार लाते हैं। इसीलिये वे आपके अतरग मित्र हैं। केवल कोमल कुसुमों को क़तार ही न लाकर वे अपने साथ नव पल्लव, नव मजरी, निर्मल नीर, नीले, लाल और धवल कमल, नव कौमुदी, नए पत्ती, नए मदमाते भ्रमर, नवजीवन और नवानद के नवरत्न भी लाते हैं। इस मधु-मास में मदमस्त, मैनमहीप अपने माननीय मित्र की मदद से मधुपों की प्रत्यचा, मालती इत्यादि मीठी महकवाले पुष्पों की कमान, मधुमकरदमय मुदित मजरी के बाण लेकर मन में मुदित होकर मधुयामिनी में मरणासन्न विरहिनियों तथा मानिनी, मध्या, मुग्धारूपी मृगियों को मारने के लिये तान-तानकर बाणों की मृदु मार मारता है। महादेवजी की मेहरबानी से आपको और भी मदद मिली

है। अवतु होने के कारण आप किसी के दृष्टिगोचर तक नहीं होते, परन्तु धनुष-बाण फलते से कहीं ज्यादा अच्छा पकड़ सकते हैं। बेचारे बेसमझ मृगों को अपने साज व सामान की शान दिखाकर मोहित कर लेते हैं, परन्तु ये मृग मार की मार से अपने प्राणों को न छोड़कर मान, लज्जा और कुल कान ही का छोड़ देते हैं।

देखो, एक चीज न छोड़ने के कारण तीन-तीन चीजें छोड़नी पड़ती हैं। बड़ा आश्चर्यजनक व्यवहार है। शिकारी के शरीर तक नहीं, धनुष और बाण भी कोमल कुसुमों के हैं, प्रत्यंचा बनाई है, चंचल चचरीकों को चुनकर और शिकार के प्राण छूटने के बजाय मान, गुन और कान ही छूटते हैं।

मार्तंड का मोह

सजनी को रवि ने कभू, देखी वसनविहीन,
याही ते है तपत नित, अधिक-अधिक मतिहीन।

कहते हैं कि किसी समय पर सूर्य ने नायिका विशेष को नग्न देख लिया। उसके सौंदर्य को देखकर आप उस पर फिदा हो गए, और लगे पागल बनकर अधिक-अधिक तपने कि कही गर्मी के कारण नायिका अपने वस्त्र फिर उतार दे, तो गरीब को उसके नग्न गात की झलक देखने को एक बार फिर मिल जाय। यह नायिका तो मालूम होती है सुंदरता की साक्षात् प्रतिमा है, अन्यथा सूरज, जिसकी नजर के सामने सैकडों गुल रहते हैं, उसे देखकर ऐसा कभी नही बौरा जाता।

सौंदर्य में भी एक अजीब शक्ति है। इसे देखने को किसका मन नहीं ललचाता। सूर्य के सदृश उच्च आत्माएँ भी इसके फेर में पडकर अपने कर्तव्य से च्युत होने लगती हैं। सूर्य यह नहीं समझते कि इस अधिक तपने से उन्हें प्यारी के गात-दर्शन तो सभव हैं कि हो जायँगे, किंतु अधिक गर्मी के कारण औरों को व्यर्थ कितना कष्ट उठाना पडेगा। मगर इसकी कौन परवा करता है? सूरज अपना दिल खो चुके। वे

तो बेचारे दीन, मतिहीन हो गए। समझ ही होती तो बेचारे ऐसा काम ही क्यों करते। इस बार तो नायिका के हाथ लगा है। स्त्रियों के स्वभाव में हठ बहुत होती है। कहीं वह कपड़ा पहर बैठ गई कि चाहे प्राण निकल जावें, किन्तु वस्त्र तो हर्गिज़ न उतारूँगी, तो समझो प्रलयकाल आ उपस्थित हुआ। क्योंकि सूरज देव भला किसके कम हैं। वे अधिक अधिक तपते ही चले जायेंगे। परमात्मा सूरज और नायिका में से किसी एक को सुमति दे।

पाठक! आप समझे कि ये सूरजजी महाराज नायिका का गात ही देखने को इतना उत्सुक क्यों हैं। नायिका का मुख देखकर ही वे संतुष्ट क्यों नहीं हो जाते। वास्तव में बात यह है कि नायिका का मुख तो उन्हें चंद्रमा के सदृश दीख पड़ता है। अतः वे पहचान नहीं पाते हैं। जब नायिका को बिलकुल नग्न देखते हैं, तब पहचानते हैं कि यह वही नायिका है।

दामिनी-दमक

घटा घोर दामिनि दमक, चातक फेकि पुकार ;

राधा माधव मुरलिका, झूलें चप की डार ।

वर्षाकाल का यह अत्यत रोचक दृश्य दर्शनीय है। आकाश घनघोर घटाटोप से घिरा हुआ है । रह-रहकर चपल विद्युत् बादलों में इस प्रकार चमक जाती है, मानो कोई चंचल युवती अपने प्रेमी का मन लुभाने के लिये पल-पल में प्रकट होकर छिप जाती है। अपने आश्रयदाता मेघों को रसपूर्ण देख आश्रित पपीहे और मयूर पुकार-पुकारकर अभ्यर्थना कर रहे हैं। इसी सुखदायी समय में सघन कुज के एकांत स्थान में एक चंपा के वृक्ष के नीचे राधा-माधव मुरली लिए झूल रहे हैं। पाठक, वह कौन पाषाण-हृदय है, जो मधुर मुरलीधारी श्यामविहारी की राधा के साथ इस झूले की झाँकी के दर्शन कर प्रेमरसार्द्र नहीं हो जायगा ? क्या राधाकृष्ण के इस समय के आनद का आप अनुमान भी लगा सकते हैं ? क्या राधिकाजी के समान आज और कोई धन्य है ?

परतु आगे चलकर निरीक्षण के बाद यह प्रश्न उठेगा कि इस अवसर पर इन्होंने अपने साथ यह मुरली भारस्वरूप क्यों

ले रक्खी है। हमने तो सुना है कि नायक-नायिका के संयोग के शुभावसर पर तो गलमाल-जैसी सुंदर और प्रिय वस्तु भी त्याग दी जाती है, क्योंकि वह उनके मिलने में बाधा उत्पन्न करती है, और कुछ नहीं तो रंग में भंग तो अवश्य कर देती है। "हारो नारोपितो कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा" यह तो सब जानते ही हैं। तो फिर इसी प्रकार बाधास्वरूप यह मुरलिका क्यों साथ ली है। क्या उनके प्रेम को उस समय इतना अवसर प्राप्त था कि परस्पर के आनंद को छोड़ एक और चीज की ओर ध्यान बँटाते, और उसकी रक्षा की चिंता में रहते। और फिर झूलने के समय तो एक हाथ में मुरली रखना और केवल एक ही हाथ से और काम होना तो बड़ा कष्ट-दायक होगा। न-जाने कब झूले से छूट पड़ें। परंतु यह सब होने पर भी मुरली का साथ रहना किसी और गूढ़ कारण का द्योतक है। क्या आपका यह ख़याल है कि जिस मुरली ने कितनी ही बार बिछुड़े हुए विरह-व्यथित इस दंपती को अपनी मधुर ध्वनि द्वारा मिलाया है, उसका अब उनके सुख के सुअवसर पर परित्याग कर दिया जाय? क्या वही मुरली जिसकी सुखद तान ने ब्रजांगनाओं को मुग्ध कर कृष्ण के प्रेम में सराबोर किया था, उनके इस संपत्तिकाल में छोड़ दी जाय? क्या जिस मुरली ने बहुत-से रास रचाए और कृष्ण का

दामिना-दमक

घटा घोर दामिनि दमक, चातक केकि पुकार ;
राधा माधव मुरलिका, झूलें चप की डार ।

वर्षाकाल का यह अत्यत रोचक दृश्य दर्शनीय है। आकाश घनघोर घटाटोप से घिरा हुआ है । रह-रहकर चपल विद्युत् बादलों में इस प्रकार चमक जाती है, मानो कोई चंचल युवती अपने प्रेमी का मन लुभाने के लिये पल-पल में प्रकट होकर छिप जाती है। अपने आश्रयदाता मेघों को रसपूर्ण देख आश्रित पपीहे और मयूर पुकार-पुकारकर अभ्यर्थना कर रहे हैं। इसी सुखदायी समय में सघन कु ज के एकांत स्थान में एक चंपा के वृक्ष के नीचे राधा-माधव मुरली लिए भूल रहे हैं। पाठक, वह कौन पाषाण-हृदय है, जो मधुर मुरलीधारी श्यामविहारी की राधा के साथ इस भूले की झाँकी के दर्शन कर प्रेमरसार्द्र नहीं हो जायगा ? क्या राधाकृष्ण के इस समय के आनद का आप अनुमान भी लगा सकते हैं ? क्या राधिकाजी के समान आज और कोई धन्य है ?

परतु आगे चलकर निरीक्षण के बाद यह प्रश्न उठेगा कि इस अवसर पर इन्होंने अपने साथ यह मुरली भारस्वरूप क्यों

ले रक्खी है। हमने तो सुना है कि नायक-नायिका के संयोग के सुअवसर पर तो गलबाहीं-जैसी सुंदर और प्रिय वस्तु भी त्याग दी जाती है, क्योंकि वह उनके मिलने में बाधा उत्पन्न करती है, और कुछ नहीं तो रंग में भंग तो अवश्य कर देती है। "हारो नारोपितो कंठे मया विश्लेषभीरुणा" यह तो सब जानते ही हैं। तो फिर इसी प्रकार बाधास्वरूप यह मुरलिका क्यों साथ ली है। क्या उनके प्रेम को उस समय इतना अवसर प्राप्त था कि परस्पर के आनंद को छोड़ एक और चीज की ओर ध्यान देते, और उसकी रक्षा की चिंता में रहते। और फिर झूलने के समय तो एक हाथ में मुरली रखना और केवल एक ही हाथ से डोर थाम लेना तो बड़ा कष्ट-दायक होगा। न-जाने कब झूले से छूट पड़ें। परंतु यह सब होने पर भी मुरली का साथ रहना किसी और गूढ़ कारण का द्योतक है। क्या आपका यह खयाल है कि जिस मुरली ने कितनी ही बार बिछुड़े हुए विरह-व्यथित इस दंपती को अपनी मधुर ध्वनि द्वारा मिलाया है, उसका अब उनके सुख के सुअवसर पर परित्याग कर दिया जाय? क्या वही मुरली जिसकी सुखद तान ने व्रजांगनाओं को मुग्ध कर कृष्ण के प्रेम में सराबोर किया था, उनके इस सपत्तिकाल में छोड़ दी जाय? क्या जिस मुरली ने बहुत-से रास रचाए और कृष्ण का

राधिकाजी के सहित प्रेम-रस-पान कराया, वही चिरसगिनी अब एक वटोही की तरह विस्मृत कर दी जाय ? नहीं-नहीं, ऐसा समझना बडी भूल है। कृष्ण-राधिका ऐसे कृतघ्न नहीं हैं। उनसे ऐसा हो नहीं सकता। तभी तो उन्होंने इस निर्जीव वस्तु को भी प्रेम-सहित अपने आनदोत्सव में सम्मिलित किया है। सचमुच, वनमाली गोपाल बड़े ही कृपालु हैं। हमें तो यह इच्छा होती है कि हम भी कहीं उनके झूले की बैठक को निर्जीव लकडी बनकर उनके उस समय के सुखस्पर्श का सुख अनुभव करते।

अटा पर अप्सरा

चढ़िकै नार अटार निरखि रही घन की छटा,
गावत राग मलार, पायल की झनकार सों।

सावन-भादों की काली घटाएँ नभ में घिरी हुई हैं, जो बड़ी सुंदर प्रतीत हो रही हैं। एक सुंदरी अटारी पर बैठी हुई उनकी छटा निरख रही है। सुमधुर स्वरों से मल्लार राग गा रही है। पैरों की पायल बजाकर उसकी झंकार से ताल का काम ले रही है। वास्तव में बड़ा सुंदर दृश्य है। वर्षा-ऋतु की श्याम घटाएँ सचमुच निराली ही छटा दिखला रही हैं और इस समय मल्लार राग सोने में सुगंध का काम दे रहा है। और उस पर खूबी यह है कि नायिका के कल-कंठ से उसका गाया जाना और उसी के पैरों की पायलकी झंकार की ताल का दिया जाना! वाह-वाह, क्या कहें बड़ा उमदा रंग जमा है, और यह सामान कहाँ जुटा है? अटारी पर। तभी तो दुगुना मजा आ रहा है। घन की छटा, ऊँची अटा, दर-असल लुत्फ़ है चटपटा।

हम कब तक यह हठ निभा सकेंगे। आखिर हारना ही पड़ेगा। क्योंकि जहाँ नायिका के नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का अखंड भंडार भरा है, यहाँ बादलों में परिमित परिमाण में ही जल है, जो खतम हो जाने पर इनको अपना-सा मुँह लेकर रह जाना होगा। अतः उचित है कि इनको कोई यह सुझावे कि ये गुरा लोगों को दुःख देने से बाज आ जायँ। नहीं तो इस देवासुर-संग्राम में बेचारे संसाररूपी सागर के शक्तिहीन मत्स्यों की शामत है।

मनी का स्नेह

निसि कारी घनघोर नभ, गाजित घन गाज ;

विद्यु नारि पै सोर चहु, मार्ग दिखावत काज ।

रात्रि का समय है । आकाश में घनघोर घटाओं का घटा-टोप है । अंधकार इतना घना है कि हाथ-को-हाथ दीखना मुश्किल है । मार्ग भी अपरिचित है । इस भयंकर समय में अपने प्यारे के प्रेम में पगी हुई एक नायिका घर से बाहर निकली । एक तो स्त्री स्वभाव से ही भीरु और कोमल चित्त-वाली होती है, तिस पर प्रकृति का यह भयंकर रूप ! यह तो बड़े-बड़े साहसी, धीर और वीर पुरुषों तक के हृदय को हिला देनेवाला है ।

परंतु पाठकगण ! यह न समझिए कि नायिका इस दृश्य को देखकर डर गई है, और हताश हो पीछे लौटने का विचार कर रही है । वह तो अपने प्यारे से मिलने को अत्यंत उत्सुक हो रही है । उसका हार्दिक प्रेम इतना प्रबल है कि जिसके आगे यह सब भयोत्पादक साज कुछ चीज़ नहीं है । मार्ग अपरिचित है और घोर गर्जन करते हुए बादल भी न-जाने कब मूसलाधार बरसने लगें, रास्ता भी एक सघन जंगल में

मे है। जिधर देखो, उधर बेचारी नायिका के प्रिय-मिलन में विघ्न डालनेवाला साज जुटा है। अगर और कोई समय होता, तो कई सखियाँ भी राह दिखाने को साथ हो जातीं, परंतु आज तो उन्होंने भी धोखा दिया। नायिका अकेली है। हृदय में प्यारे का उत्कट प्रेम रेशम की कोमल रस्सियों से, अलक्ष्य रीति से, उसको अपनी ओर खींच रहा है। वह चल पड़ी, उत्साह उसको आगे बढाए चला। परंतु उस काली अँधियारी रैन में राह कैसे मिले? उसकी दशा अत्यंत दयनीय है। प्रकृति के किसी भी अंश ने उस दुखिया पर दया न की, प्रत्युत् हरएक ने जी-भर उसकी राह में अडचनें पैदा कीं। परंतु—"जाको राखे साइयाँ मार न सकि है कोय।" स्त्री की दुःख-पूर्ण दशा को देखकर किसका कठोर हृदय नही पसीजता? आखिर विद्युत् के हृदय में दया-भाव का संचार हुआ। उसने चंचलता, द्युति और आभा इत्यादि गुणों से उसे अपनी प्रिय सखी जाना, और सख्योचित व्यवहार भी किया। समय समय पर चमककर नायिका की राह पर प्रकाश डाला, जिससे थोड़े ही समय में वह संकेतस्थल पर अपने प्रियतम से जा मिली।

धन्य है विद्युत्! तूने एक सच्ची सखी का कार्य किया कि इस विपत्ति में अपनी सखी की सहायता की।

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी; आपति काल परखिए चारी।

झूले की झमक

गोरा में झूलो परो, ललित गग लिय झुलाय,

फाग बीच अरुझे पिया, मही' बहुत लपटाय।

वर्षा-ऋतु भी क्या ही आनंदकारी है। इसमें तो वृक्ष विटपों के साथ-ही-साथ मनुष्यों के थके-माँदे मन भी मोद से भरने लगते हैं। उनमें नूतन इच्छारूपी कोमल पत्ते निकलने लगते हैं। प्रेमरूपी पुष्प प्रस्फुटित होने लगते हैं, जिनसे ऐसी हृदयहारी सुमधुर सुगंध निकलती है कि सूँघनेवाले का मन प्रेम में मस्त हो जाता है। सारी वनस्थली सुंदर नायिका की नाईं हरी साड़ी पहने अत्यंत रम्य प्रतीत होती है, और उसके शरीर से वह मनोहारी गंध निकलती है, जो प्राणियों के जी में नवजीवन का संचार करती है। जगह-जगह निर्मल जल से भरे जलाशय और उनमें फूले हुए कमल और कुमुद अत्यंत रोचक मालूम पड़ते हैं।

इसी अवसर पर प्रेमी-प्रेमिकाओं में अनेक प्रकार की केलि-क्रीड़ाएँ हुआ करती हैं। कहीं जल क्रीडा, तो कहीं वनविहार, कहीं रास-रचना, तो कहीं और-और रंग-राग। गर्ज़ यह है कि कोई-न-कोई प्रेम-लीला होती ही रहती है।

वर्षाकाल में सावन का महीना है। नायिका ने सघन वन में एक वृक्ष के नीचे झूला डाल दिया है और सखियों के सग बारी-बारी झूल रही है। इनको नायकजी का तो खयाल है ही नही। बेचारे वे भी प्रेमी हैं। झूला झूलने में उनको भी आनद आता है। परतु वे इस आनद से वचित रक्खे गए हैं। प्रेमियों को अपना प्रेम प्रकट करने से कौन रोक सकता है। आखिर वे भी लीलास्थल पर आ पहुँचे, और वहाँ एक कुज की ओट में छिप रहे, और चुपचाप बैठे सखियों की प्रेम-भरी नि.शक बाते सुन-सुनकर मन-ही-मन मुदित होने लगे। आप तो सबको देख रहे हैं, पर स्वय किसी को दिखाई नहीं देते। देखते-देखते उनके मन में उस रग-राग में सम्मिलित होने की उत्सुकता बढने लगी। वे मौका देखकर प्रकट होने का विचार करने लगे। इसी समय नायिका ने झूले पर पदार्पण किया और झूलने लगी। सखियों ने बात-ही-बात मे दो एक झूले ऐसे जोर से लगाए कि स्वभाव-भीरु, कोमल-हृदया नायिका के होश उड़ने लगे। वह भय से बोल उठी 'मरी'। परतु हँसोड़ सखियों को तो इस 'मरी' में और मजा आता था, और उस बेचारी के होश उड रहे थे। उसका वह करुण स्वर कौन सुने ? ऐसे मौकों पर तो ईश्वर ही सहायक होते हैं। अच्छा मौक़ा देखकर नायकजी अपने स्थान से लपके और नायिका

को बचाने के बहाने बीच ही में उसको पकड़कर अंक से लगा अपनी इच्छा पूर्ण की। इसको देखकर नायिका सहम गई। वह शर्म से सिमिट गई, पर करे क्या ? उसी ने तो बार-बार 'मरी-मरी' कहकर बचाने का निर्देश किया था। नायकजी ने कोई बुरा काम नहीं किया, जो उसको बचा लिया। हाँ, इतनी उनकी अक्लमंदी थी कि नायिका का भी भय निवारण किया और अपने मन की अभिलाषा को भी पूर्ण किया।

प्रेम-प्रस्वेद

आई है री सरदऋतु, सखी पाकरस सेव ,
प्रिय के हियरे लगत ही, प्रकटत प्रेम पसेव ।

प्राय शरद्-ऋतु में नायिकाएँ पाक-रस का सेवन किया करती हैं। यह इसीलिये कि पाक-रस सात्विक और पुष्ट पदार्थों के सम्मिश्रण से बनाए जाने के कारण बलदायक और गुणकारी होता है, और शरद्-ऋतु की कड़ी शीत को मिटाकर शरीर में गर्मी का सचार करता है। हमारी नायिका को भी उनकी प्रिय सखी ने शरद् ऋतु मे पाकरस सेवन करने की सलाह दी। भला सखी होकर ऐसी सलाह न देती, तो और कौन ऐसी सम्मति देता। उस हिताभिलाषिणी सखी ने तो उसके सुख के लिये यह राय दी थी। परतु क्या आप खयाल कर सकते हैं कि इसका उत्तर नायिका ने क्या दिया होगा ? क्या उसने सखी को अपने हितचिंतन के लिये धन्यवाद दिया और उसकी सलाह मानकर पाक बनाने का विचार किया ? नहीं-नहीं, उसको तो यह सलाह उलटी हानिकारक जँची। उसने यह सोचा कि अगर पाक-सेवन किया जायगा, तो यह निश्चय है कि उसकी पुष्टता के कारण शरीर से, शरद्-ऋतु के होते हु

भी प्रस्वेद बहने लगेगा। मतलब यह है कि उसने जान लिया कि सखी की सलाह का मतलब यही है कि पाक-सेवन से शरीर में उष्णता आ जायगी, और शीत मिट जायगी। परंतु इस बाज़ार से लाए जानेवाले सौदे की तरह पाक-रस के द्वारा लाई जानेवाली उष्णता का तो उसको ख़याल तक नहीं था, क्योंकि उष्णता तो उसके घर की ही चीज़ थी। जब चाहती, तब प्रिय से अंक-भर मिलती, और इस प्रेम मिलन से हृदय में जो उष्णता आ जाती, वह भी शीतकाल की सर्दी मिटाने को पर्याप्त थी। यही नहीं, यह उष्णता तो इतनी प्रबल होती कि शीतकाल में भी सात्त्विक प्रस्वेद उसके बदन से प्रवाहित हो चलता। गर्मी प्राप्त करने का जब यह स्वाभाविक ही तरीक़ा उसके पास मौजूद था, तो भला वह कृत्रिम-रीति से, पाक-सेवन से, उष्णता लाने की इच्छा ही क्यों करती। अत उसने सखी इस प्रस्ताव का प्रेमपूर्वक खंडन किया और इसका कारण भी उसे सुझा दिया। नायिका ने ख़ूब दूरदर्शिता का काम किया, नहीं तो अगर बिना सोचे-समझे सखी की सलाह स्वीकार कर लेती, तो फलस्वरूप जो प्रिय के प्रेमालिंगन से प्रकटते हुए प्रेम-प्रस्वेद के साथ ही-साथ जो पाक रस-प्रभूत प्रस्वेद प्रादुर्भूत होता, तो दोनों प्रस्वेद धाराओं के मिले हुए इस प्रवाह में न-जाने कितने प्रेमी प्रवाहित हो जाते।

बादल मे बिजली

कारी सारी पहिनकै, रमत स्याम सन फाग
बिजुरी जिमि घन मैं चमकि, दमकि झमकि गइ भाग।

शीतकाल और वसत की वयःसधी का समय है। न तो ज्यादा गर्मी और न सर्दी ही है। फागुन का महीना और होली के दिन। स्त्री-पुरुष मदमस्त होकर फाग खेलने में लगे हुए हैं। चारों ओर गुलाल के लाल-लाल बादल उड-उडकर लाल पानी की झड लगाए हुए हैं। बाहरी अगों के साथ-साथ लोगों के भीतरी मन भ रँग

नवेली राधा ने भी अपने सौंदर्य को चमकाने के लिये अथवा श्याम के रग मे रग मिलाने के लिये श्याम साडी पहनी है। वे साडा के काले रग से कृष्ण के मन को लाल रँगना चाहती हैं। इसी वेश में वे हिम्मत करके गिरिधारी के साथ फाग खेलने निकली हैं। परतु खेल आरभ होते ही रँगीले रसिकराज ने जल-भरी पिचकारी चलाकर उसको अच्छी तरह से रग में सराबोर कर दिया। भीगी श्याम साड़ी से पानी झरने लगा और अग पर साडी के चिपक जाने से सुडौल अंग-प्रत्यग दिखाई देने लगे। इसी

समय, वे अभी नवोढ़ा होने के कारण लज्जित होकर भाग गईं।

इस चंचल भगान का ही कवि ने वर्णन किया है। जलार्द्र होकर झरते हुए कारे पटरूपी मेघ में बिजली की तरह चंचलता के साथ अपने अंग की चमक-दमक दिखाकर, लज्जित होकर और पायल, किंकिनी, नूपुर इत्यादि आभूषणों को झनकाती हुईं, वे भाग गईं।

क्या आप समझते हैं, वे अकेली ही भाग गईं? नहीं-नहीं, यदि आप ऐसा समझते हैं, तो महत्व ग़लती पर हैं। बेचारी अबला ऐसी घन अँधियारी में अकेली होती, तो डर न जातीं। वे अपने साथ मनमोहन के मन को और लज्जा सखी को लेती गईं।



संसार का सार

करत सौंदर्योपासना, जीवन बीते मोर,
निरखत सुंदर वस्तु सब, जैसे चंद चकोर।

जैसे चकोर को चंद्र प्यारा लगता है, चंद्र को देखते-देखते वह कभी नहीं अघाता, उसी प्रकार सकल सुंदर वस्तुओं का निरीक्षण करते हुए, सौंदर्योपासना में मेरा जीवन व्यतीत हो।

सौंदर्योपासना मे क्या सार है, यह वे ही लोग जान सकते हैं, जो इस उपासना को कर चुके हैं। सौंदर्य ही इस सारी सृष्टि का शृंगार है। इस के बिना यह संसार केवल एक भार है, जिसमे गुजर होना दुस्वार है। यों तो सुंदर वस्तु सबको ही अच्छी लगती है, किंतु जो इसके कदरदान हैं, उनको उसके देखने से कुछ निराला ही आनंद आता है। गुल सबको भाता है, किंतु बुलबुल को उसे देखकर कुछ और ही मजा आता है। चंद्रमा की खूबी चकोर से पूछिए। मेघों की शोभा चातक बतला सकता है। फिर जो सौंदर्योपासक हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? जिधर दृष्टि डालते हैं, उन्हें सौंदर्य ही सौंदर्य नजर आता है। श्याम घन में उन्हें कृष्णचंद्र दिखलाई देते हैं।

कोयल की किलकार में इन्हें मनमोहन की मुरलिका की मधुर तान सुनाई पड़ती है। नायिका के मुखड़े में उनको निष्कलंक चंद्र के दर्शन होते हैं। मृग, खंजन और मीन को देखकर वे किसी नायिका के सुंदर नेत्रों के ध्यान में मग्न हो जाते हैं। प्रकृति-नटी नित उनकी आँखों के सामने नाचती रहती है। चिड़ियों के चहचहाने में वे प्रकृति-देवी के कल कंठ से मधुर संगीत का रसास्वादन करते हैं।

सारांश, यह सारा संसार उन्हें सौंदर्यमय प्रतीत होता है। प्रत्येक वस्तु में उन्हें परम परमात्मा के पवित्र दर्शन होते हैं। अंत में वे सौंदर्य के उस लोक में पहुँच जाते हैं, जहाँ केवल सच्चे सौंदर्योपासकों की ही गति है और जहाँ की सुंदर झाँकी के दर्शन होते ही आत्मा उस महाकवि में लय हो जाती है, जिसने इस संसाररूपी महाकाव्य की रचना की है।

सौंदर्य की शक्ति

हे प्रभाव सौंदय को, सबपै एक समान,
जलज, जलज की जाति के, जल को प्रिय जिमि प्रान।

कौन ऐसा है, जो सौंदर्य को देखकर प्रसन्न नहीं होता ! किस पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता ? इसका असर सब।पर एक-सा होता है। सुदर वस्तु किसे प्रिय नहीं लगती ? कमल अपनी सुदरता के ही कारण जल को प्राणों के समान प्यारा लगता है। तभी तो जल हमेशा उसे अपने शीश पर बिठाए रखता है। सौंदर्य के प्रभाव के सामने स्वभाव का प्रभाव काफूर हो जाता है। जल का यह स्वभाव है कि कोई भी क्यों न हो, बस, हाथ पड़ते ही उसको डुबो देता है। किंतु कमल की कमनीयता को देखकर वह अपना काम करना भूल जाता है। सौंदर्य के कारण उसकी प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है, और तारीफ़ यह है कि कमल ही नहीं, बल्कि काष्ठादि जो कमल की जाति के हैं, उनको भी जल कमल ही के समान प्रिय समझता है—उन्हे कभी डुबोता नहीं, बल्कि उनके साथ अन्य जातिवालों की भी रक्षा करता है। जो प्रेम-पथ के पथिक हैं, उनसे यह बात छिपी हुई नहीं है कि किस प्रकार

जिसको हम प्यार करते हैं, उससे कुछ भी संबंध रखनेवाले हमें उसी की तरह प्यारे लगते हैं।

शेक्सपियर ने कहा है कि सोने की अपेक्षा सुंदरता को चोर जल्दी लगते हैं। यह बात शेक्सपियर ने बिलकुल पते की कही है। किसी ने कहा है—'सुबरन को ढूँढ़त फिरत, कवि, व्यभिचारी, चोर।' हम मानते हैं कि ढूँढ़ते फिरते हैं, किंतु तभी तक कि जब तक सौंदर्य के दर्शन नहीं होते। सौंदर्य को देखते ही चोर चोरी करना भूल जाता है, कवियों की क़लम उनके कर में ही रह जाती है। सौंदर्य को देखकर कवि और उनकी क़लम दोनों भौनक्के-से रह जाते हैं। अब रहे व्यभिचारी, सो उन बेचारों को तो सौंदर्य को देखकर सुध ही नहीं रहती।





सौंदर्य की शक्ति

है प्रभाव सौंदय को, सबपै एक समान ,
जलज, अलज की जाति के, जल को प्रिय जिमि प्रान ।

कौन ऐसा है, जो सौंदर्य को देखकर प्रसन्न नहीं होता? किस पर इसका प्रभाव नहीं पडता? इसका असर सबपर एक-सा होता है। सुदर वस्तु किसे प्रिय नहीं लगती? कमल अपनी सुदरता के ही कारण जल को प्राणो के समान प्यारा लगता है। तभी तो जल हमेशा उसे अपने शीश पर बिठाए रखता है। सौंदर्य के प्रभाव के सामने स्वभाव का प्रभाव काफूर हो जाता है। जल का यह स्वभाव है कि कोई भी क्यों न हो, बस, हाथ पडते ही उसको डुबो देता है। किंतु कमल की कमनीयता को देखकर वह अपना काम करना भूल जाता है। सौंदर्य के कारण उसकी प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है, और तारीफ़ यह है कि कमल ही नहीं, बल्कि काष्ठादि जो कमल की जाति के हैं, उनको भी जल कमल ही के समान प्रिय समझता है—उन्हें कभी डुबोता नहीं, बल्कि उनके साथ अन्य जातिवालों की भी रक्षा करता है। जो प्रेम-पथ के पथिक हैं, उनसे यह बात छिपी हुई नहीं है कि किस प्रकार

जिसको हम प्यार करते हैं, उससे कुछ भी संबंध रखनेवाले हमें उसी की तरह प्यारे लगते हैं।

शेक्सपियर ने कहा है कि सोने की अपेक्षा सुंदरता को चोर जल्दी लगते हैं। यह बात शेक्सपियर ने बिलकुल पते की कही है। किसी ने कहा है—'सुवरन को ढूँढ़त फिरत, कवि, व्यभिचारी, चोर।' हम मानते हैं कि ढूँढ़ते फिरते हैं, किंतु तभी तक कि जब तक सौंदर्य के दर्शन नहीं होते। सौंदर्य को देखते ही चोर चोरी करना भूल जाता है, कवियों की क़लम उनके कर में ही रह जाती है। सौंदर्य को देखकर कवि और उनकी क़लम दोनों भौचक्के-से रह जाते हैं। अब रहे व्यभिचारी, सो उन बेचारों को तो सौंदर्य को देखकर सुध ही नहीं रहती।

विधि का विज्ञापन

नभ पाती विधि कर लिखी, छन-छन करत बखान;
काहू के रहत न कभू, सब दिन एक समान।

कोई चतुर नायक किसी मानिनी नायिका से कह रहा है कि तू इतना मान न कर। देख, यह रूप-यौवन हमेशा नहीं रहता है। अतः मान का परित्याग कर प्रेमपूर्वक मुझसे मिल। तू देखती नहीं है कि दुनिया में कोई भी चीज़ सदा क़ायम नहीं रहती है। आकाश की ओर देख। यह विधि के हाथ का लिखा हुआ पत्र है, और क्षण-क्षण पर यह पत्र इस बात को बतलाता है कि सब दिन एक समान कभी किसी के नहीं रहते।

वास्तव में बड़ी सुंदर पाती है। विधि की पाती जो ठहरी, सुंदर क्यों न हो। भला इस पाती को पढ़कर कौन मानिनी मान छोड़कर अपने प्राणपति के गले न जा लगेगी।

विधि ने 'एडवर्टाइज़' करने का अच्छा तरीक़ा निकाला है। यह तो एडवर्टाइज़मेंट के आर्ट में अगुआ अमरीका से भी आगे बढ़ गया। आकाश से बढ़कर इसके लिये अन्य कौन स्थान उपयुक्त हो सकता है? यहाँ से यह विधि का विज्ञापन

बराबर विश्व की आँखों के सम्मुख बना रहता है। इस विज्ञापन की सत्यता में शक कर ही कौन सकता है? कौन नहीं जानता कि इस परिवर्तनशील संसार में परिवर्तन का पुञ्ज प्रत्येक पदार्थ के पीछे लगा हुआ है? प्रकृति का नियम ही ऐसा है। फिर इसे कौन टाल सकता है? सूर्य कभी उदय होता है, तो कभी अस्त होता है। पूर्व में उदय होता है, तो पश्चिम में अस्त होता है। कभी दिन है, तो कभी रात। कभी अँधेरी रात है, तो कभी चाँदनी। कभी चन्द्रदेव के दर्शन होते हैं, तो कभी केवल तारे ही टिमटिमाते हुए नजर आते हैं। कभी निर्मल नभ नजर आता है, तो कभी घन की घटाएँ अपनी छटाएँ दिखलाती हैं। कभी इंद्र-धनुष का आनंद है तो कभी बिजली की बहार है। कभी वर्षा है, तो कभी वेगवान वायु का बवंडर।

सारांश, हम किसी भी वस्तु को स्थायी रूप में नहीं पाते हैं। अतः हमको किसी भी कार्य को अनुकूल अवसर मिलते ही शीघ्र कर डालना चाहिए, और सुख में फूलना नहीं चाहिए तथा दुःख में घबराना नहीं चाहिए।

नायकों को चाहिए कि नायिकाओं के मान करते ही उन्हें विधि की पाती पढ़ा दिया करें। पढ़ते ही उनका सारा मान काफूर हो जायगा।

प्रेम-प्रताप

जहा प्रेम राजत रहत, श्रम नाहि तहाँ लखात ;

करन परत जो श्रम तऊ, सब कहँ उहै सुहात ।

प्रेम मे परिश्रम नही प्रतीत होता, बल्कि परिश्रम यदि करना भी पडे, तो और अच्छा लगता है। बिलकुल ठीक है। इसकी ताईद वे लोग करेगे, जो प्रेम की भक्ति करते हैं। जन्म-भूमि के प्रेम के कारण मनुष्य कैसी-कैसी मुसीबतों का सहर्ष सामना करने को तैयार होता है। माता अपने बाल-बच्चों के प्रेम में कैसे-कैसे कष्ट सहन करती है। प्रेमी अपने प्रेमिका की आज्ञा का पालन कितना प्रेमपूर्वक करता है, फिर चाहे उसे उसमें कितनी ही तकलीफें क्यों न उठानी पडें। दो मित्र एक दूसरे का काम कैसी प्रसन्नता से करते हैं। प्रेम के प्रताप से मृत्यु-शय्या पुष्प-शय्या के सदृश प्रतीत होती है।

किंतु—'यह प्रेम को पथ कराल महा, तलवार की धार पै धावनो है।' यह प्रेम ही की शक्ति है कि पतग दीपक पर हँसता-हँसता अपने प्यारे प्राणों को न्योछावर कर देता है। अपने माशूक़ की मुहब्बत में आशिकों को महान् मुसीबतों का सहर्ष मुकाबला करते देखा गया है।

प्रेम परमेश्वर है। कई दफ़े देखा गया है कि इश्क़मजाज़ी इश्क़ हक़ीक़ी में तब्दील हो जाता है। किसी ने कहा है—

बुतों के इश्क़ से हम सब्र किया करते हैं,
वह सबक़ भी है ख़ुदा से लौ लगाना दुश्वार।

एक शायर के ख़ुदा तो ख़ुद अपने मुँह से फ़रमाते हैं कि—

गर मुझसे मिला चाहे तो कर ख़िदमत बुतों की,
बुत मेरी ही सूरत है और बुतख़ाना मैं ही हूँ।

प्रेम-परमेश्वर

प्रेम भक्ति सों ज्ञान है, प्रेम भक्ति मों मुक्ति ;
परमेश्वर है प्रेम हू, मर्च मानहु यह उक्ति ।

प्रेम की भक्ति से ही ज्ञान उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रेमी पुरुष ही ज्ञानी हैं, और प्रेम की भक्ति से ही मुक्ति है, अर्थात प्रेमी पुरुषों का ही मोक्ष होता है। प्रेम ही परमेश्वर है, इस कथन को सत्य मानिए। वास्तव में सच्चे ज्ञानी वे ही हैं, जिन्होंने प्रेम के तत्त्व को समझ लिया है।

'ढाई अक्षर प्रेम का, पढै सो पडित होय।' जिसने प्रेम का प्रकृत पाठ पढा है, वही पूर्ण पडित है, वही विचक्षण विद्वान् है, वही गभीर ज्ञानी है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पडित ।'

प्रकृति स्वय हमें पल-पल पर प्रेम का पाठ पढाती है। सूर्य का विना किसी स्वार्थ के सरोज को स्फुटित करने के लिये समय पर उदय होना, चाँद का कुमुदिनी के लिये निष्काम नृत्य करना, पपीहे की पिउ-पिउ की टेर पर और केकी की कूक पर मेघों का जल-वृष्टि करना, पक्षियो का मीठे मीठे गाने गाना, वृक्षों का फलना-फूलना आदि जितनी बातें दृष्टिगोचर होती हैं,

सब इस बात को प्रमाणित करती हैं कि वे सब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं। इनके हृदय में सबके प्रति प्रेम है। बस, इसी प्रेम को ज्ञान कहते हैं। प्रेम की भक्ति में उपर्युक्त सबसे ज्ञान की प्राप्ति होने पर, बेचारी मुक्ति हमारे चरणों में लोटने लगती है। अतः जब प्रेम के प्रताप से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हो गई, फिर क्या है। मुक्ति तो दासी के सदृश हमारी आज्ञानुसार सेवा करने को तैयार रहती है।

पाठको! प्रेम एक महान शक्ति है। इसके सहारे से वास्तव में मनुष्य नर से नारायण बन सकता है। प्रेम की उपासना करते-करते मनुष्य स्वयं परमेश्वर बन जाता है, क्योंकि प्रेम ही तो परमेश्वर है। क्या यह बात आपसे छिपी हुई है कि प्रेम के वशीभूत होकर भगवान भक्तों को तुरंत दर्शन देते हैं? अब इसका रहस्य आप समझ लीजिए। पहले कहा जा चुका है कि प्रेम ही परमेश्वर है। बस, ज्यों ही भगवान के प्रति भक्तों का प्रेम पूर्णता को प्राप्त हो जाता है, त्यों ही वही उनका प्रेम परमेश्वर के रूप में उनकी आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है।

"कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।"

इति शुभम्

गंगा-पुस्तकमाला की उत्तमोत्तम, उत्कृष्ट और सचित्र पुस्तकें

अबला (सचित्र) १), १॥)
कर्मफल (सचित्र) १॥),२)
जब सूर्योदय होगा १), १॥)
कुम्हार तेजा (सचित्र) ॥), १)
पतन (सचित्र) १॥), २)
पवित्र पापी (सचित्र) ३),३॥)
बहता हुआ फूल (सचित्र) २॥), ३)
बिदा (सचित्र) २॥), ३)
मा दोनों भाग ३)
रंगभूमि (दो भाग) ४), ६)
विचित्र योगी १), १॥)
विजया (सचित्र) १॥), २)
साधे पंडित १॥)
संसार-रहस्य अथवा अधःपतन १॥), २)
हृदय की प्यास (सचित्र) १॥), २)
अद्भुत आलाप १), १॥)
अश्रुपात (सचित्र) १), १॥)
चित्रशाला (सचित्र) २), २॥)
बालक कथा माला दोनों भाग १), १॥)
आयुन की बातें १॥), २)
गृहिका (सचित्र) १), १॥)
नाट्यकथामृत (सचित्र) १), १॥)
नहा निर्झर ॥।=), १।=)
प्रेम गंगा (सचित्र) १), १॥)
प्रेम-द्वादशी (सचित्र) १),१॥)
प्रेम प्रसून १=), १॥=)
मजरा (सचित्र) १), १॥)
सौ अजान और एक सुजान १), १॥)
कर्बला १॥), २)
कीचक १), १॥)
कृष्णकुमारी (सचित्र) ॥), १)
शाहजहाँ (सचित्र) १=),१॥=)
जयद्रथ-वध ॥=), १=)
दुर्गावती (सचित्र) १), १॥